Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाक्षिक

सारिका

मार्च: अंक-२

अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह: एक साहित्यिक दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बी एच ई एल समय के साथ, समय पर

हमारे व्यक्तित्व के दूसरी ओर भी देखिये

अधिकतर लोग बी एच ई एल के बारे में यही सोचते हैं कि भारत में केवल विद्युत शक्ति के पीछे ही इन लोगों का हाथ है। लेकिन यह सिक्के का मात्र एक पक्ष है। 'जनता के लिए शक्ति' उपलब्ध कराने का बी एच ई एल का वादा केवल बिजली की शक्ति तक ही सीमित नहीं है। बी एच ई एल एक अन्य प्रकार की शक्ति के निर्माण में मदद देने के लिए भी पूरी तरह संलग्न है। यह ऐसी शक्ति है जो एक सुदृढ़ औद्योगिक ढांचे से प्राप्त होती है। आज देश की आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक बहुत से उद्योगों में बी एच ई एल के परिष्कृत उपकरण और सिस्टम्स प्रमुख निवेश बने हुए हैं। उद्योग जैसे सीमेंट, इस्पात, पेट्रोलियम, रसायन, परिवहन, खनन और उर्वरक।

भारतीय उद्योगों की बढ़ती हुई परिष्कृत आवश्यकताओं के साथ, ठीक समय पर बी एच ई एल ने प्रमुख उद्योगों की विशेष जरूरतों को पूरा करने के लिए विभिन्न किस्मों के विशिष्ट उपकरण और सिस्टम्स विकसित किए हैं। उद्योग जैसे इस्पात, धातु-कर्म, पेट्रोलियम, उर्वरक, रसायन, कागज, चीनी, रबड़, खनन, कपड़ा, परिवहन और कई अन्य। अकेले 1977-78 में ही बी एच ई एल ने इन्हें 100 करोड़ रुपये से अधिक मूल्य के उपकरण सप्लाई किए हैं।

इस समय यह 22 से भी अधिक प्रमुख परियोजनाओं में सम्मिलित है—और केवल उपकरण सप्लायर के रूप में ही नहीं। उद्योग के लिए बी एच ई एल के उपकरणों की विभिन्न किस्मों में शामिल हैं इलेक्ट्रिक मोटर, ट्रांसफ़ॉरमर, स्विचगियर, रेक्टिफ़ायर, कपेसिटर, इंडस्ट्रियल टरबाइन और टरबो सेट, सेंट्रीफ़्यूगल कम्प्रेसर, प्रोसेस बॉयलर, वेस्ट हीट रिकवरी इक्विपमेन्ट, हीट एक्सचेन्जर, इलेक्ट्रोस्टैटिक प्रेसिपिटेटर, इंडस्ट्रियल फ़ैन और वाल्व।

और इन क्षेत्रों में बी एच ई एल की भूमिका का निरन्तर विस्तार होता जा रहा है। आज यह कई प्रकार के विभिन्न उद्योगों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप पूरे ड्राइव कंट्रोल और अन्य सिस्टम का निर्माण कर उसकी सप्लाई कर रहा है।

बी एच ई एल—समय पर उद्योगों की सेवा के लिए विस्तृत क्षमताओं के साथ

उद्योगों को बेहतर सेवा उपलब्ध कराने और ग्राहक की आवश्यकताओं को समन्वित करने की दिशा में अतिरिक्त कदम के रूप में बी एच ई एल ने एक इंडस्ट्रियल ड्राइव सिस्टम्स ग्रुप बनाया है। यह ग्रुप विद्युत उपकरणों के अनुबन्ध पूरे करता है जिनमें शामिल होते हैं सिस्टम इंजीनियरी, कंट्रोल स्किमेटिक के डिजाइन, इस्पात, धातु-कर्म, कागज, खनन और अन्य उद्योगों के लिए संस्थापन और संचालन। यह मार्केट का व्यापक अध्ययन भी करता है, ताकि ग्राहकों की बराबर बदलती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नए उत्पाद विकसित करने का उपक्रम किया जा सके।

BHEL जनता के लिये शक्ति

भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड

मार्केटिंग एण्ड सेल्स डिवीज़न
नई दिल्ली हाउस, बाराखंबा रोड
नई दिल्ली 110 001
रजिस्टर्ड ऑफिस :
18-20 कस्तूरबा गांधी मार्ग
नई दिल्ली 110 001

SAA/BHEL/1071

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रु.6650 में लंदन बस पर सैर का मज़ा.
रु. 5850 में मज़ेदार इटालियन खाने का लुत्फ़.
रु. 6590 में स्विट्ज़रलैंड के शीतल प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द.
रु. 6600 में मोनालिसा की मोहक मुस्कान का रहस्य.

रोम, जिनेवा, पेरिस, लंदन. साथही हमारे वापसी ट्रिप वाले एक्सकर्शन फ़ेयर पर और भी कई शहर.

मिलान–रु. 6099. ब्रुसेल्स या प्राग या वार्सा–रु. 6600. यूरोप के लिए सभी एक्सकर्शन फ़ेयर 14 से 90 दिनों तक के लिए मान्य हैं, तथा रास्ते में किसी एक जगह रुकने की सुविधा भी है. भारत-यू.के. फ़ेयर 21 से 90 दिनों के लिए मान्य हैं और रु. 7350 देने पर रास्ते में किसी एक जगह रुकने की सुविधा भी मिलती है. सभी एक्सकर्शन फ़ेयर बम्बई/दिल्ली से ही यात्रा प्रारंभ करने के लिए हैं. दूसरी जानकारी के लिए अपने ट्रैवेल एजेंट या एयर-इंडिया से संपर्क कीजिए.

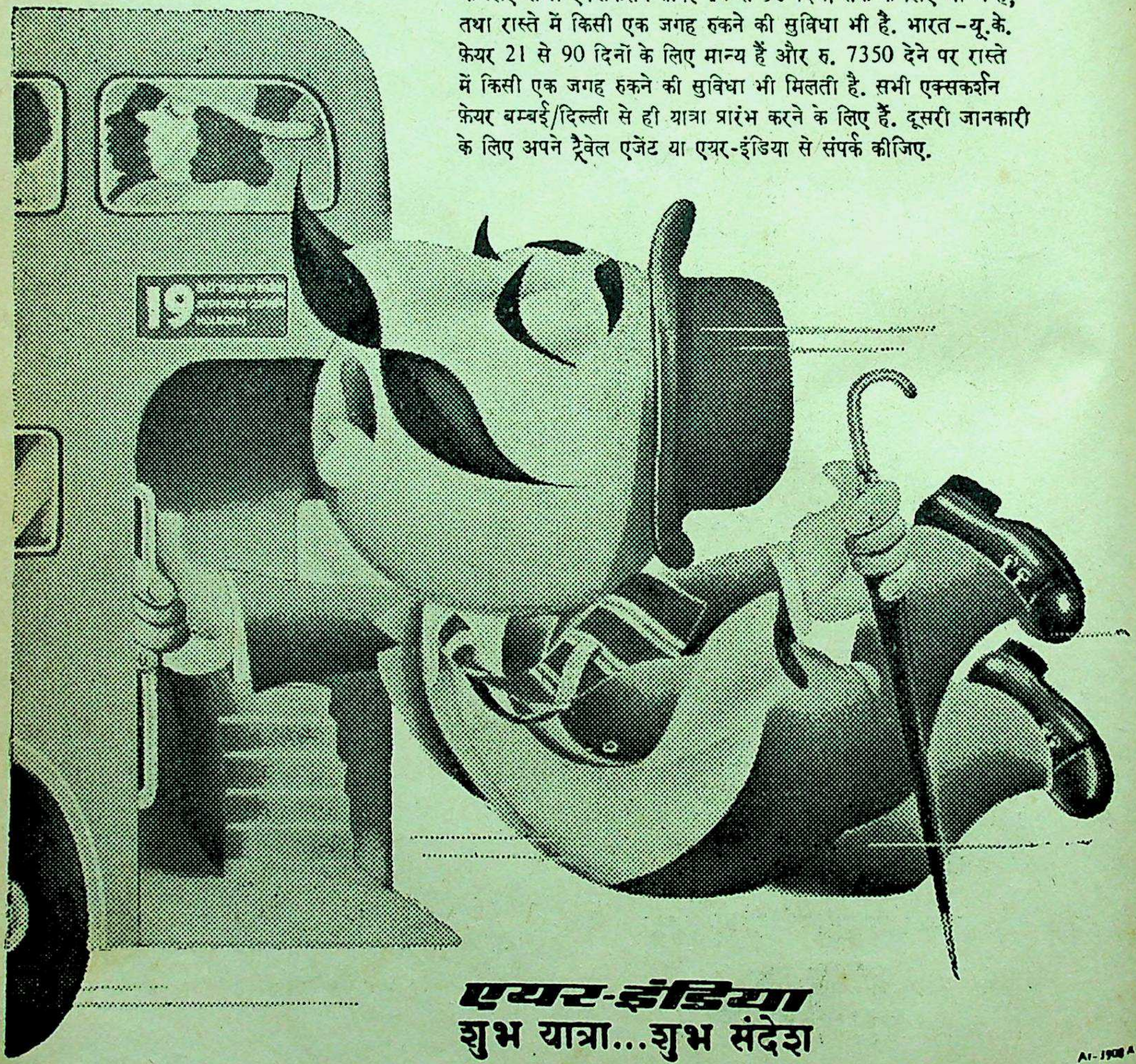

एयर-इंडिया
शुभ यात्रा...शुभ संदेश

AI-1908 A

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियों और कथा - जगत की जीवंत पाक्षिकी

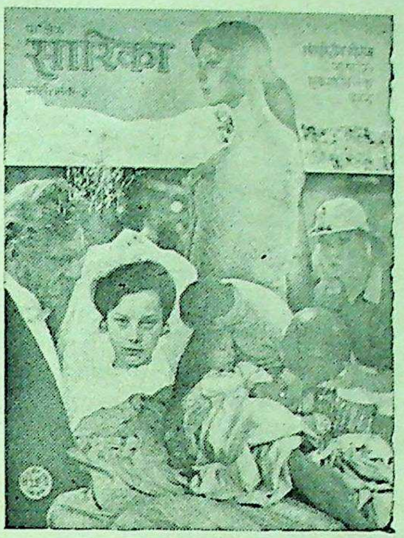

सारिका

वर्ष : १९; अंक : २३९
१६ से ३१ मार्च, १९७९

कहानियां

12. सुरक्षा : श्रीलाल शुक्ल
18. कुर्सी : ठाकुरप्रसाद सिंह
20. घोड़े का नाम घोड़ा : गिरिराज किशोर
28. एक थी शकुन'दी : सच्चिदानंद धूमकेतु
34. क्लेवर गर्ल : लोचन बख्शी
38. सीमेंट की बोरी (जापानी) : योशिकी हयामा
62. बीच का आदमी : धीरेंद्र अस्थाना
70. दोमुंहे सांप : प्रेम कुमार

धारावाहिक

40. प्रभु तुम कैसे किस्सागो (लंबी कहानी : समापन किस्त) : मनोहरश्याम जोशी
54. ताकि सनद रहे (उपन्यास) : रामकुमार भ्रमर

विशेष

46. सातवां अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह : एक साहित्यिक दृष्टि से : कुंवरनारायण
50. कहानी फिल्मों और फिल्मकारों की : हरिश्चंद्र गर्ग
52. फिल्म समारोह : स्याह हाशिये : ब्रजेश्वर मदान
66. जुनूं में एक शाम : शानी

अन्य आकर्षण

6. पाठकों का पन्ना
8. संपादकीय : रघुराय की चित्र प्रदर्शनी
लघुकथाएं
27. सिफारिश : सुरेंद्र मंथन
27. दो प्रतिशत कर : सुरेश धींगड़ा
27. इज्ज़त : सत्यशुचि
ग़ज़लें
26. उमाशंकर तिवारी
33. रफ़ीक जाफ़र, सुदर्शन पानीपती
37. हसन कमाल
39. परवीन शाकिर (पाकिस्तान)
45. आज की संपूर्ण स्थिति और लेखन : मृणाल पांडे
53. आसपास बिखरी कहानियां
68. रोज़नामचा : से. रा. यात्री
69. घटना-कथा : दिनेश त्यागी
72. पखवारे की पुस्तक : मधुरेश
74. हलचल

संपादक :
कन्हैयालाल नंदन
उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल, रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल
सज्जा : रवि शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों का पन्ना

बड़के और लड़के

जनवरी 1979 की पहली सारिका मिली. नव वर्ष के उपहार मिले. राजस्थान के सूचना मंत्री श्री महबूब अली साइकिल पर चले तो उन्हें उछाला गया, केरल के मुख्यमंत्री पद पर जब श्री नंबूदरीपाद थे, साइकिल पर चलते थे. 'सारिका' क्या इस तथ्य को याद रख सकी? श्रीमती कृष्णासोबती का यह आत्मकथ्य एक सोच पैदा करता है—"शायद मेरे अंदर एक ठंडी औरत और एक गरमाहट भरा लेखक दोनों एक साथ मौजूद हैं." श्रीमती ईसाडोरा डंकन की **'पलायन-कथा'** शाश्वत सत्य का स्केच खींचती है. कलाकार सर्वत्र कलाकार होता है. श्री रोदां के द्वारा कला पूजन तब भी हुआ है जब उन्हें तिरस्कार मिला. ममता कालिया की कहानी **'लड़के'** में वर्तमान पर करारा प्रहार किया गया है. जब 'बड़के' दुरुस्त नहीं तब लड़के कैसे दुरुस्त होंगे?

▣ **बदरीप्रसाद "सूर्य," भोजपुर (बिहार)**

धर्मक्षेत्र-लिखितक्षेत्र

आपकी पत्रिका के जनवरी : 2 में प्रकाशित **'जरिया-नजरिया'** के संबंध में दो शब्द कहना चाहूंगा. आपने लिखा है "लिखित शब्द के प्रति आस्था की स्थिति हमारे यहां अधिक चिंताजनक है . . . कहां टिकेगी?" मेरे विचार से भारतीय दृष्टिकोण को यह मत सही रूप में प्रस्तुत नहीं करता. न्याय दर्शन का यह मत कि "आप्तोपदेश: शब्दः" (न्या. सू. 1/1/6) भारतीय दर्शन के क्षेत्र में चार्वाक को छोड़ सभी को मान्य रहा है. मीमांसा दर्शन तो 'शब्द—नित्यतावाद' को स्वीकार करता है. भारतीय साहित्य और धर्म में शब्द की जो प्रतिष्ठा है वह सिक्ख धर्म के 'गुरु ग्रंथसाहब' के रूप में उच्चतम शिखर तक पहुंचा दी गयी है. लिखित शब्द का इतना महत्व है कि हमारे समाज में गीता और भागवत को प्रणाम किया जाता है.

▣ **डॉ. रामनारायण व्यास, इंदौर (म.प्र.)**

श्लाघनीय कुठाराघात

सारिका फरवरी अंक दो में **'जरिया नजरिया'** के अंतर्गत सत्य को उद्घाटित करते हुए आपके सारगर्भित विचार पढ़े. काली होती आदमीयता, आदमी के भीतर उठती भेद भाव की दीवार, गली-सड़ी व्यवस्था, ऊंच-नीच की भावना, मानसिक दास्ता एवं जातिवाद की जड़ों पर किया गया कुठाराघात श्लाघनीय है. लेख की यह पंक्तियां महत्वपूर्ण व दृष्टव्य हैं "खान हो जाने पर पड़ोसी धर्म पिट जाता है. आखिर हमारी मानसिकता, वैचारिकता कब तक आदमी आदमी में फर्क होने का भ्रम ढोती रहेगी. आखिर हमारे सोच की जमीन क्या है."

खान साहब का दर्द मेरा अपना दर्द है. स्वतंत्र भारत में आज भी (वह भी राजधानी में) शूद्रों-अछूतों (वर्तमान के हरिजन) को मकान नहीं मिलते. इसका मैं स्वयं मुक्तभोगी हूं क्योंकि हरिजन होने के नाते निकृष्टतम हिंदू हूं और एक मकान मालिक द्वारा भगाया जा चुका हूं.

इसी प्रकार **'दीवाने आम : दीवाने खास'** के अंतर्गत श्री दर्शन लाल ने भी **'स्वाधीन भारत का एक गांव'** की कहानी में सत्य का उद्घाटन कि[...] उनके ये शब्द कितने सटीक हैं कि "[...] प्रतिशत आरक्षण तो हरिजनों को [...] मिला था, लेकिन व्यवहार में [...] प्रतिशत मिल पाया है उन्हें? बड़ी मु[...] से अब तक पांच प्रतिशत, दुसाध[...] पहले भी अछूत थे, आज भी अछू[...]

▣ **के. एस. तूफान, बिजनौर (उ[...]**

तीखी अनुभूति से साक्षात्[...]

'सारिका' जीवन का आईना [...] इधर सारिका में वास्तविकता की [...] अनुभूति से साक्षात्कार भी प्राप्त हो र[...]

सारिका से मुझे **'इंद्रधनुषी गर्भा[...]** **'देश'** जैसी सशक्त कहानियों को [...] भाषा में अनुवाद करने का सुअ[...] मिला.

और फरवरी अंक-1 में प्रकाशि[...] से. रा. यात्री का 'रोजनामचा' [...] **एक रुष्ट अंतरात्मा'** से मैं प्रभावित हू[...]

▣ **डी. एन. श्रीनाथ, कर्नाटक**

मन को छू गये

हिंदी साहित्य के स्थापित उपन्यास[...] श्री इलाचंद्र जोशी के साथ केश[...] वर्मा का साक्षात्कार तथा प्रख्यात [...] रमानाथ अवस्थी के संस्मरण म[...] छू गये. दोनों के पठन से यह नि[...] निकालकर गौरवान्वित हुआ कि [...] जोशी सिद्धांतवादी लेखक हैं. [...] स्वाभिमान है, आत्मश्लाघा नहीं.

▣ **गौरीशंकर सिन्हा, इलाहाबाद**

डॉट-डैश की शैली में

भ्रमरजी का **'ताकि सनद रहे'** सारिका में पढ़ रहा हूं और संपादकजी मैं इस रोग से ग्रस्त हूं कि भ्रमर का कोई डाकू उपन्यास पढ़ते ही मेरे दिमा[...] में तीसरा पत्थर का फौजदार, पुतलीबाई की पुतलीबाई और सुलताना घूमने लगते हैं. और पात्रों की मनोवैज्ञानिक पकड़ की तारीफ करनी पड़ती है भ्रमर एक सशक्त कथाकार हैं और चंबल क्षेत्र के निवासी होने के नाते बाग़ी साहित्य के मास्टर भी. पर पता नहीं क्यों मुझे इनके उपन्यासों का हर बाग़ी एक दूसरे का 'रिवाइज्ड एडीशन' लगता है. भ्रमर चंबल की आंचलिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं. और इस आंचलिकता के नाम पर पाठकों को हर बा[...] सूत्रनुमा वाक्य 'डॉट—डैश' शैली में लिखे हुए संवाद, चबाचबा के लिखी गयी गालियां और उधार का वातावरण पढ़ने को मिलता है.

▣ **आलोक तोमर, भिंड (म. प्र.)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि की सीमा

सारिका के फरवरी अंक-1 में शेखर जोशी की **'हलवाहा'** शीर्षक कहानी पढ़कर इस बात की खुशी हुई कि अब हमारा ग्रामीण यथार्थ फिर से कथा-साहित्य के केंद्र में प्रतिष्ठित होने लगा है. व्यापक सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में यह एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है. कुछ समय पहले मार्कंडेय की कहानी **'हल लिये मजूर'** को भी इस सार्थक प्रक्रिया की एक कड़ी माना जा सकता है.

पिछले दो दशकों की कहानी में प्रायः वे ही प्रश्न उभर कर आते थे जिनका संबंध शहरी मध्य वर्ग के जीवन से होता था. यद्यपि इस विषय की कोई अंतर्भूत सीमा नहीं है—ऐसा सोचना अनेक गंभीर समस्याओं को पैदा कर सकता है—फिर भी मध्यवर्गीय जीवन-स्थितियों से लगभग पूरी तरह घिरे हुए कहानी लेखन को देखकर लगता था कि हमारे शिक्षित समुदाय से जुड़े अधिकांश लेखकों का मुख्य सरोकार अपने आसपास के प्रश्नों तक ही सीमित है और यह भी कि धीरे-धीरे ये लेखक एक व्यक्तिवादी दृष्टि के दायरे में घिर कर अपनी साहित्यिक अर्थवत्ता को कम करते जा रहे हैं. दृष्टि की इस सीमा के कारण ये लेखक अपने मध्यवर्गीय परिवेश की अनेक समस्याओं और कठिनाइयों को भी समझ पाने में समर्थ नहीं थे. मसलन उन्हें यह अहसास नहीं था कि आपसी संबंधों के संकट की पृष्ठभूमि में किन सामाजिक शक्तियों का हाथ है.

शेखर जोशी की पिछले छह-सात वर्षों की कहानियों में वह महत्वपूर्ण वैचारिक संघर्ष दीखता है जिसके कारण वे निरंतर अधिकाधिक समाजोन्मुखी लेखन की दिशा में बढ़ते गये हैं.

▣ **आनंद प्रकाश, दिल्ली.**

सुपीरियर बीइंग

यथार्थ की भूमि पर श्री नरेशजी ने जिस रूप में अपने आपको संवारा, वाकई वह प्रशंसा के योग्य है. सबूत के तौर पर उनकी टिप्पणी —"एक सफल आदमी साहित्य का विषय हो ही नहीं सकता" तथा "व्यक्ति की सफलता-असफलता उसके मूल्यांकन का आधार नहीं हो सकती!" काफी है. स्त्री को सुपीरियर बीइंग मानकर उन्होंने अपने आदर्श के प्रारूप को पाठकों के लिए नया रूप दिया है.

▣ **शशि कुमार सिंह, सिन्दरी (धनबाद)**

डबल रोल

'सारिका फरवरी अंक-2 हाथ में आया. सबसे पहले उदयप्रकाश की कहानी **मौसाजी** पढ़ी. पूरी तरह पराजित होकर भी 'मौसाजी' एक दूसरा व्यक्तित्व ओढ़े हैं. यह 'डबल रोल' बड़ा मार्मिक लगा.

▣ **सुनीता भटनागर, विदिशा**

राजधानी में कजरौटे की तलाश

फिल्मों की नगरी बंबई में जन्म लेकर भी 'सारिका' कभी रूज, लिपस्टिक, ब्रा का दर्शन नहीं कर सकी. लेकिन अब दिल्ली में आकर उसकी आंखों में अभिशप्त जीवन की यंत्रणा नहीं, बल्कि ह्विस्की की खुमारियां हैं. इस लिहाजे 'सारिका' का आवरण अब तो सटीक प्रस्तुत करो. भारत की स्त्री का यह रूप नहीं है जो कि सारिका में आ रहा है. बंबई में रहकर यह बात होती तो क्षम्य थी लेकिन वह राजधानी में आकर कजरौटा ही तलाश रही है.

▣ **राजेंद्र आहुति, झाझा (बिहार)**

आस्था और कोरी जुमलेबाजी

लिखित शब्द के प्रति आस्था (**जरिया-नजरियाः** जनवरी अंक : 2) का आलम यह रहा है कि अगर किसी ने धार्मिक साहित्य से लेकर संस्कृत का कोई श्लोक पढ़ लिया तो उसे अस्वीकारने का कोई कारण हो ही नहीं सकता. सामान्य-जन को, जो अधिकतर अपढ़ है, एक अखबार की खबर का हवाला देकर हम चुप रहने पर मजबूर करते आये हैं. लेकिन यही सामान्य जन सेंसर हुए समाचारों और सरकार के धुआंधार प्रचारित किये गये लिखित शब्दों के अंबार पर अनास्था की मोहर लगा चुका है. फिर भी हम सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति में कोई भी सुधार न पाकर लिखित शब्दों के प्रति आस्था या अनास्था के भंवर में फंसे हैं. पत्रकार व साहित्यकार पर एक दायित्व है कि वह स्थिति की गंभीरता को समझे. ज्यादातर लेखक शब्दों के व्यापारी बन बैठे हैं. बंद होना चाहिए यह व्यापार. वही लिखा जाना चाहिए जो अनास्था का निर्माण कर रही हजारों हजारों आस्थाओं को समाप्त कर सामान्यजन की सुरक्षा की गारंटी दे. भ्रम में डालने वाले लिखित शब्दों को सामान्य जन नकार देगा. कोरी जुमलेबाजी पर उसे आस्था नहीं हो पायेगी, यह तो तय है.

▣ **चंद्रसिंह दहिया, चंडीगढ़**

लिखते चले जाने का परिणाम

अपने साक्षात्कार में निर्मल वर्मा ने कहा था—"मैं अगर लिखता और लिखता चला जाऊं तो शायद अपनी शंकाओं के रेगिस्तान को पार कर सकता हूं." इस लिखते चले जाने का ही परिणाम है, कारेल चापेक की **'दूसरी जिंदगी'** का वह अंश—". . . तुम गरीबों को दान नहीं दोगे क्योंकि ऐसा करने में अन्याय से छुटकारा नहीं मिल सकता. उसकी जगह तुम खुद गरीब बन जाओगे. . . बल्कि बीमार, शराबी, भयग्रस्त, अपमानित." अंत में कारेल, मंत्री महोदय के पश्चाताप को भी उतनी ही शिद्दत से झेलता है याकि उस क्षण-भंगुर भयावह करोंच को दुबारा अपने अंडरग्राउंड के अंधेरे में दबा देता है—दोनों संभावनाएं हैं कहानी में.

▣ **कुमार अरुण, सारण, बिहार**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के बहाने अपने को देखता हूं

□ रघुराय

प्रकृति, जो रिश्ते बदलती है

इस बार 'ज़रिया-नज़रिया' और 'तस्वीर बोलती है' के स्थान पर रघुराय के इन छायाचित्रों को देते हुए अपने पाठकों से क्षमायाचना तो मुझे करनी है लेकिन चित्रों के ज़रिये रघुराय के रचना संसार तक आपको ज़रूर ले चलना चाहता हूं. प्रारंभ से ही रघुराय के चित्रों का मैं प्रशंसक रहा हूं. चित्रों की तकनीकी उपलब्धि का नहीं, उनके पीछे के सोच का. असल में भारत में छायांकन को कला के दर्जे तक ले जाने वाले छायाकार बहुत कम हैं, जो हैं उनमें से कुछ डार्करूम तकनीकों में उलझ कर रह जाते हैं, कुछ मशीनी चकाचौंध में डूब जाते हैं, कुछ हैं जो कैमरे के आधुनिकीकरण या डार्करूम कीमिया-गिरी से सरोकारी कम रखते हैं. कैमरे में जो क्षण कैद कर रहे हैं उस क्षण के प्रति ज्यादा ईमानदार रहना चाहते हैं. जब आदमी उस क्षण के प्रति ईमानदार होकर उसे संवेदनशीलता के साथ पकड़ता है तो वह आर.आर. भारद्वाज, टी. काशीनाथ, पी.एन. मेहरा, वामन ठाकरे, ओ.पी. शर्मा, मित्तर बेदी, किशोर पारेख अथवा एस. पाल में से कुछ बनता है. इसी कुछ को ढूंढ़ता हुआ मैं आज से करीब 15 साल पहले रघु से बंबई में टकराया था जब उसकी एक प्रदर्शनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चट्टानों का सुनियोजित परिवार

जहांगीर आर्ट गैलरी में लगी थी. और तब से आज तक उसकी फोटो कला के विकास को बड़े ध्यान से देखता आया हूं. उसकी नवीनतम प्रदर्शनी जब दिल्ली की त्रिवेणी कला संगम दीर्घा में लगायी गयी तो उसकी रचना-दृष्टि का एक बिल्कुल नया आयाम देखने को मिला. घुसते ही चट्टानों के चित्र मिले. पानी में आईना देखती हुई चट्टानें. पारदर्शी. रघु ने पूछा, "नहीं लगता कि ये चट्टानें पारदर्शी हो गयी हैं, अपने आपको झांकती हैं, खोजती हैं कुछ?" मैंने चारों तरफ नजर दौड़ायी तो सच मेरे तईं भी चट्टानें जीवंत हो उठीं. मैंने पूछा "कहां से लाये ये बोलते शिला-खंड?" "जमशेदपुर से" उसका उत्तर था और उसने एक समूचे शिला-परिवार की तरफ इशारा किया. बिखरी हुई विशाल शिलाएं, "उसे देख नंदन, लगता है. . . . आज भी बहुत-सी अहिल्याएं बुत बनी खड़ी हैं और किसी राम का इंतजार कर रही हैं कि वह आयें और इनके पत्थर के जिस्म में नयी जान डाल दें. और वो देख, चट्टानों ने भी परिवार नियोजन कर लिया है." सच, चट्टानें कुछ इस तरह खड़ी थीं स्त्री-पुरुषों के बीच बच्चों का आभास दे रही थीं. कैमरे के माध्यम से चट्टानों की जीवित अभिव्यक्ति का वह कला-संसार सचमुच अद्भुत था.

इस बार के छायाचित्रों में रघु ने प्रकृति को ही अधिक पकड़ा था.. प्रकृति को अपनी समग्रता में. पत्तियों में समाया हुआ प्यार–मनुहार, उन्माद और समर्पण का समूचा संसार मेरे सामने था. जब आप प्रकृति के प्रति संवेदनशील होते हैं तो प्रकृति कितनी संवेदनशीलता से आपका साथ देती है इसका प्रमाण उसका वह चित्र है जिसमें उसने एक फ्रेम में कोने से बादलों को आते पकड़ा है. बीच में बादल का सघन टुकड़ा है और तीसरे बादलखंड को दीवार के पार से ऐसे पकड़ा गया है मानों वह झरने में बदल गया है. प्रकृति को ऐसी बारीकी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखना और धीरज के साथ उसके अगले आचरण का इंतज़ार करना ही इस चित्र का मूल बिंदु था जिस पर मैंने रघु को छेड़ दिया और वह छिड़ा तो ऐसे. "कैमरा पकड़ना और क्लिक दबाना कोई कला नहीं है, ऐसा तो सभी कर सकते हैं. कोई भी चीज़ सिर्फ़ वही नहीं होती जो वह दिखायी देती है. उसमें और भी बहुत कुछ होता है, वही महत्त्वपूर्ण होता है. उसे हम तभी देख सकते हैं जब हम उसे महसूस करें, उसे अपने अंदर जियें. यह जीना सबके वश का नहीं है."

रघु काफी गंभीर हो गया था. उसकी आंखें शून्य में कहीं टंगी हुई थीं और वह बोले जा रहा था—"कुछ भी मेरे लिए सही तभी होता है, जब अंदर से अपील करता है. . . वह अपील सिर्फ इमेजरी की अपील नहीं होनी चाहिए. . ."

"तू जितने भी फ्रेम बनाता है क्या वे सभी अच्छे होते हैं?" मैंने पूछा.

"अक्सर ऐसा नहीं होता और हो भी नहीं सकता, जो ऐसा कहते हैं वे अपने आपको तो धोखा देते ही हैं, आर्ट को भी धोखा देते हैं. मेरे साथ अक्सर 36 फ्रेम में से एक भी अच्छा नहीं होता और कभी हुए तो काफी हो गये—इसके लिए कोई शर्त नहीं होती—जीने की भी कोई शर्त होती है यार? जब मैं नेचर स्टडी करता हूं तो सही में मैं अपनी खुद की स्टडी करता हूं. नेचर की परवाह अगर आपको नहीं तो उसे भी आपकी परवाह नहीं. वह (नेचर) अपने फार्म, परिवेश, रिश्ते बदलती रहेगी."

तभी पास में ही मधुर खिलखिलाहटें गूंजीं. रघु की समाधि टूटी. हम लोग खिलखिलाहटों की ओर मुखातिब हुए. रंग, रोगन और आयरन से दुरुस्त युवतियां रेस्तरां की ओर जा रही थीं. रघु अचानक उदास हो गया. कुछ ठहर कर बोला, "यार, इनमें से कोई भी प्रदर्शनी देखने या पसंद करने नहीं आयी. सब अपने को ही दिखाने और पसंद करवाने आते हैं. दे टेक फुल केयर ऑफ देयर बोडीज एंड क्लाथ्स आनली. . . देख तुझे एक

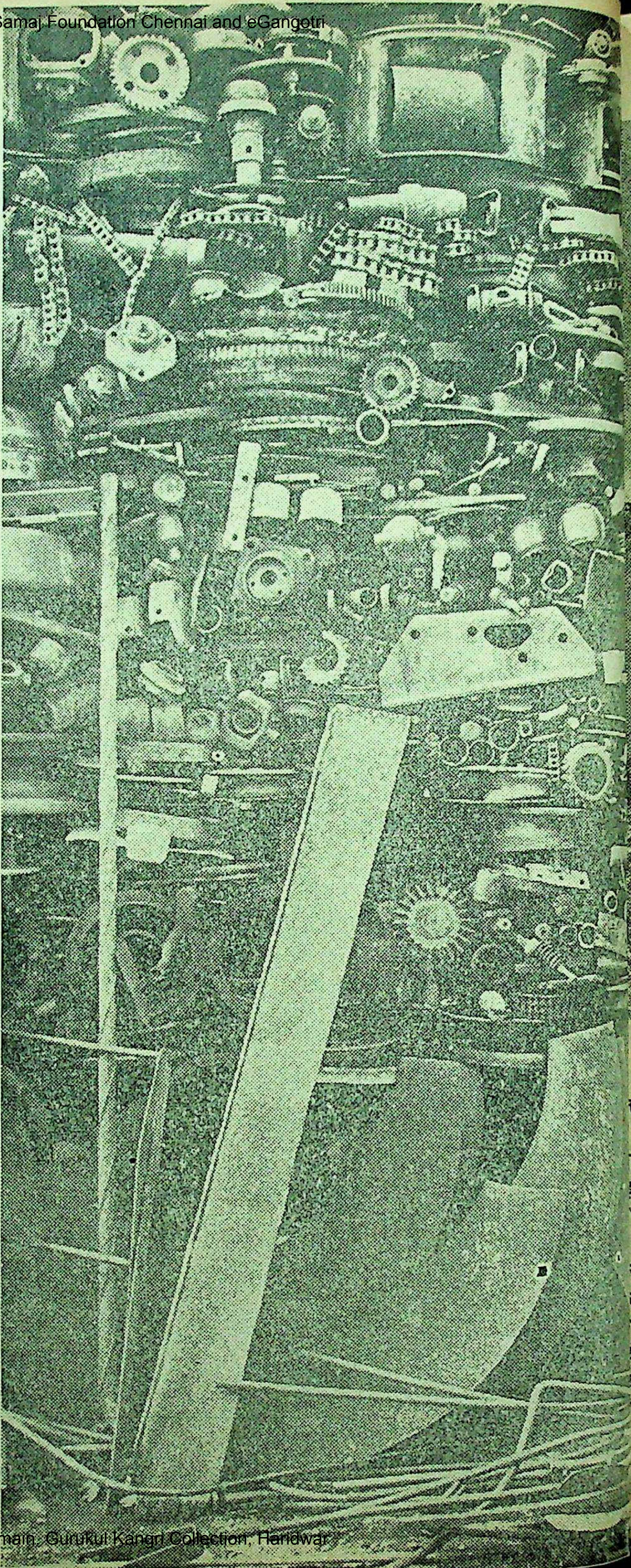

21वीं सदी : आदमी के स्पेयर पार्ट्स→

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

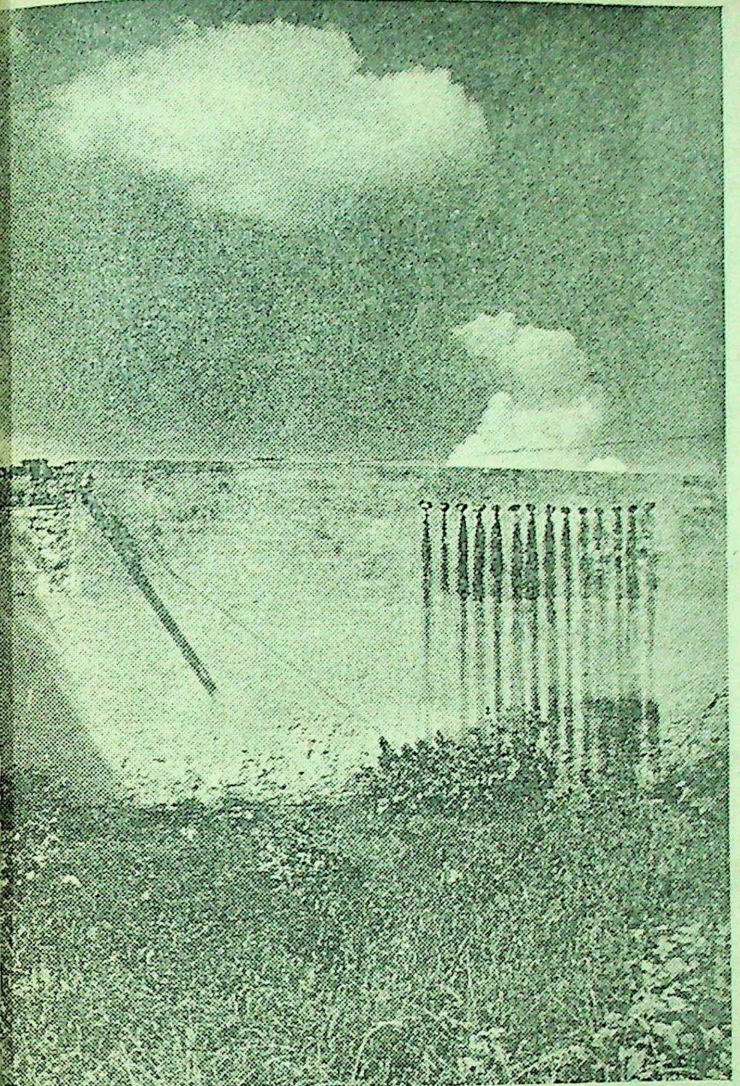

बादलों का रस

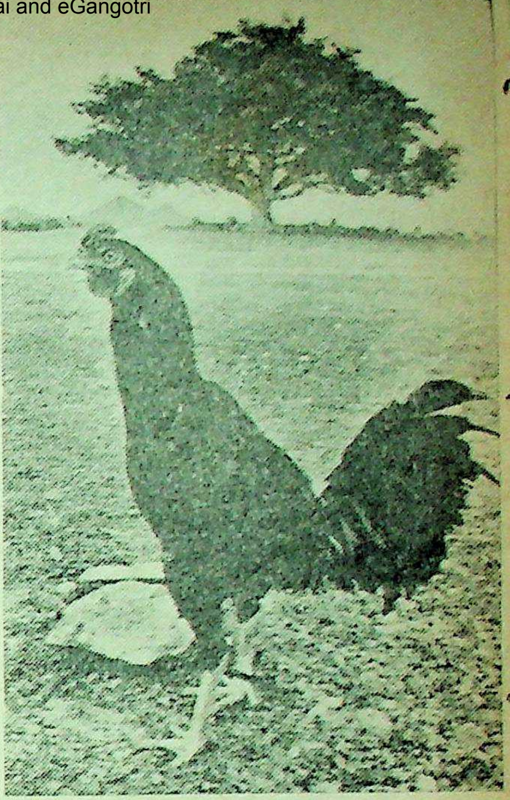

गर्वोन्नत स्वाभिमान

…क चीज़ दिखाता हूं. वो देख…
…छोटी-सी प्यारी-सी बच्ची. जरा
…के हंसने, बात करने, चलने और
…ने के अंदाज़ पर ध्यान दे––कितनी
…री रिद्म है उसकी हर चीज़ में.
…मणीपुरी के गुरूजी की बेटी है.
…जी इसे भी मणीपुरी सिखा रहे हैं.
… दिन मैंने उनसे कहा––यदि आप
…सिखायेंगे तो यह आपकी आइडें-
…ी का रिपीटेशन होगा––आपका
…डक्ट होगा. और यदि इसे खुद करने
… तो वह आपकी उपलब्धि होगी…
वह इसका खुद का क्रियेशन होगा…"

"किसी भी 'क्रियेशन्' के कुछ बुनियादी सिद्धांत होते हैं. रघु कला को इस कदर छुट्टा छोड़ने से तो अराजकता बढ़ जायेगी. नहीं?" रघु अपने हाथों, आंखों… यहां तक कि कभी-कभी पूरे शरीर से बोलता है. खीझ कर बोला, "तो तुम इसकी स्वच्छंदता के पर कुतर देना चाहते हो? कुतरो और बनाओ उसे पिछलग्गू अपने बाप-दादों का." "इसीलिए पारंपरिक कलाओं में प्रयोग नाम की चीज़ खारिज है. आप बंधी-बधायी लीक से हटना नहीं चाहते. जो हटता है उसे मान्य नहीं ठहराते. यही घपला है और यह सब जगह है. इसीलिए मीडियाकर पनप रहे हैं और जो सच्चे मौलिकता में आकंठ डूबे हुए रचनाकार हैं वे कोने-खोतरे में पड़े अपनी साधना में मस्त हैं." बोलते हुए रघु हिरन की तरह चौकन्ना हो-होकर अपनी प्रदर्शनी के दर्शकों पर निगाह फेरता जाता है और आखिर में लगे मुर्गे वाले चित्र पर आकर अटक जाता है. पूछता है, "जानता है कि यह कौन है?"

"मुर्गा," मैं अभिधा में बोला. "नहीं, मैं हूं, मैं!" और उसने मुर्गे की तरफ स्वाभिमान में उठी हुई गर्दन को उसी तरह मोड़ा और दर्शकों में खो गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षा

• श्रीलाल शुक्ल

एक दिन मि. टंडन जब पपलू का खेल निबटाकर घर लौटे तो उन्हें बंगले का फाटक खुला हुआ मिला. रोज़ के मुकाबले उन्हें आज डेढ़ घंटे देर हो गयी थी. इसलिए खुला फाटक देखकर उन्हें ताज्जुब हुआ. पर कुछ और अचंभे अभी सामने आने बाकी थे : उस वक्त पोर्टिको में तेज़ रोशनी हो रही थी, माली गाड़ी की हैडलाइट के ठीक आगे आकर खड़ा हो गया था, पत्नी यानी उषाजी अपने मोटापे और ढीली साड़ी को संभालती हुई बरामदे की सीढ़ियों पर खड़ी थीं और माली से कुछ कह रही थीं.

रोज़ के हिसाब से सब कुछ बदला हुआ था. ज़्यादातर होता यह था कि इतनी देर से लौटने पर वे बंद फाटक के पास गाड़ी रोककर आधा मिनट तक हार्न-रिंग दबाये रहते, फिर खीझते हुए खुद फाटक खोलते, खुद ही बंद करते. लड़की रचना उर्फ रुची आकर दरवाज़ा खोलती और उषाजी अपने कमरे में चार इंच डनलो-पिलो पर लुढ़की हुई शास्त्रीय संगीत का कोई टेप सुनती हुई मिलतीं.

पर आज उनके गाड़ी रोकते-रोकते उषाजी सीढ़ियों से नीचे उतर आयीं और बोलीं, "तुमने देखा?"

"क्या?"

"उसे."

मि. टंडन कमसुखन और नाज़ुकमिज़ाज आदमी थे और वास्तव में एक ऊंचे रिटायर्ड अफसर थे. पहेलियों में बोलना और बात करना उन्हें नापसंद था. आंखें सिकोड़कर उन्होंने पत्नी को गौर से देखा, पूछा "कहना क्या चाहती हो?"

"तुमने फाटक के उधर वाले खंभे के पास किसी को नहीं देखा? एक गुंडा है. . .रुची के पीछे लगा है."

वे जब कार से लौट रहे थे, ठंडी हवा चेहरे पर स्फूर्तिदायक लगी थी, सड़क चिकनी और वीरान थी, पेड़ सुगंधित फूलों से सुसज्जित थे और वे जानते थे कि ऊपर साफ-सुथरा और तारों भरा आसमान है. इस दशा में उन्हें उषाजी की बातचीत अनावश्यक रूप से नाटकीय जान पड़ी. बोले, "तुम भी न जाने क्या-क्या सोचती रहती हो! हुआ क्या है?"

तब कई तथ्य प्रकट हुए. बंगले के सामने साठ फीट चौड़ी सड़क पर बिजली के खंभे अंधेरे में हैं, सभी ट्यूबलाइटें बुझी हुई हैं, ऐसा कई दिन से हो रहा है और ताज्जुब है कि रोज़ रात को मोटर से लौटते हुए मि. टंडन को इसका कभी एहसास नहीं हुआ. बहरहाल, यह गुंडा कई रोज़ से इधर आकर खंभे के पास खड़ा हो जाता है, माली ने पहले भी देखा था, रुची ने भी, आज भी यह धुंधलका होते ही यहां आ गया है. दो घंटे पहले, यही आठ बजे, जब रचना उर्मिला के बंगले से सड़क पार करके आ रही थी तो गुंडे ने अचानक उसे छेड़ा, पूछा कि आपकी घड़ी में क्या टाइम हुआ है. इस पर रचना तेज़ी से बंगले की ओर मुड़ी. तब उसने कड़क कर कहा, "इस तरह भाग क्यों रही है? मैं सिर्फ टाइम जानना चाहता हूं, मेरी घड़ी बंद हो गयी है." रचना किसी तरह भागकर बंगले में आयी, बेहाल थी और हांफ रही थी. बाद में माली और नौकर सड़क पर देखने के लिए गये और बताने के लिए लौट आये कि गुंडा बंगले के नुक्कड़ पर अब भी खड़ा हुआ है. उषाजी ने उन्हें रोका कि अभी कुछ मत बोलो, क्या पता उसके

पास छुरा हो या तमंचा हो, साहब को क्लब से लौटने...

"क्या कर रही हो रुची?" कुछ करने या सोच... मि. टंडन ने पूछा.

रुची कमरा बंद करके लेट गयी थी, कह चुकी... मैं यहां नहीं रह सकती. कुछ-कुछ ऐसा ही आदमी... यही या कोई और—कई दिन से कालिज के फाटक... दिखायी पड़ता ... ममी, ये बातें यूं ही, बेकार... करती हैं. मैं मामाजी के यहां चली जाऊंगी. ठीक है...

मि. टंडन का चेहरा खिंचकर गंभीर हो गया. वे... ओर चल दिये. उषाजी ने कहा, "वह गया न हो तो कु... नहीं, पुलिस को फोन करना ठीक रहेगा. पीछे-पीछे... एक नाबालिग़ नौकर के साथ वे फाटक की सुरक्षा... रेखा पार करके, एक अजीब से उलझाव का अनुभव... धुंधली सड़क पर आ गये. सब कुछ सहज था; वही... हवा थी और बहुत ऊपर बसंती आसमान में चमकते... उन्होंने सतर्कता से इधर-उधर देखा और उन्हें बंगले... पर अंधेरे खंभे के नीचे सुलगती सिगरेट की चमक दि...

अचानक उनके लिए सहजता का तिलिस्म टूट ग... एक खौफ़नाक बियाबान में तब्दील हो गयी.

मि. टंडन उलझाव और टकराव से बराबर दूर रहे... का सारा रास्ता शांतिमय और सपाट रहा था. उन्हें... कचहरी नहीं जाना पड़ा, अपना राशन कभी खुद नहीं... पड़ा, रेल या बस का टिकट लेने या रिज़र्वेशन कराने... वे कभी लाइन में नहीं खड़े हुए. रेडियो और रिवाल्वर... का नवीकरण, कार की रजिस्ट्रेशन फीस जमा करने की... बिजली और बंबे के कनेक्शन लेने की दौड़-धूप, इस सब... मुक्त रहे, हमेशा कोई दूसरा ही उन के लिए यह... रहा; सिर्फ दो-चार बार हवाई जहाज़ की यात्रा के दौ... दरम्यानी शहरों में अगली फ्लाइट के लिए अपनी सीट... करानी पड़ी थी और ऐसे मौकों पर चुस्त कर्मचारियों... उन्हें उतनी चुस्त और हसीन लड़कियों की हसीन मु... उतनी हसीन नहीं लगी थी. बहरहाल. . .!

आज अचानक उनकी व्यवस्थित और सुचारु ज़िंद... को रौंदते हुए बाहरी दुनिया की अदृश्य पाशविक श... हमला बोल दिया था. उसने उन्हें थोड़ी देर के लि...

पृष्ठ :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

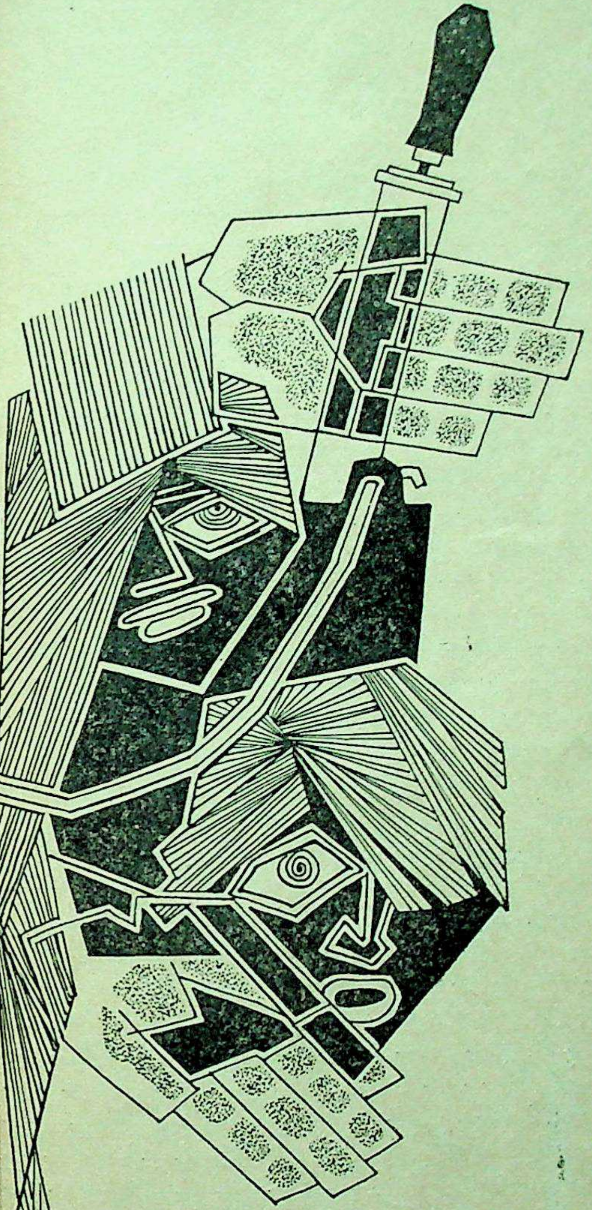

दिया, पर बरसों के अभ्यास ने उन्हें धीरज के साथ परिस्थिति पर काबू पाने के लिए प्रोत्साहित किया. उन्होंने थाने पर फोन किया, जहां से किसी ऊंघे हुए सिपाही ने उन्हें पुलिस के उड़नदस्ते से संपर्क करने की सलाह दी. फिर कई नाराजगी-भरी टेलीफोन वार्ताओं के बाद, और कई बार वे जिस ओहदे से रिटायर हुए थे, उसका जिक्र हो चुकने पर उन्हें सांत्वना मिली कि पुलिस आ रही है. बाद में पुलिस के आने पर पता चला कि सड़क पर कोई नहीं है और उड़नदस्ता मि. टंडन के मन में एक खीझ पैदा करके वापस लौट गया. पुलिस वालों ने कुछ कहा नहीं पर मि. टंडन को शुबहा था, और इसलिए खीझ थी कि पुलिस मामले को बड़े हल्के ढंग से ले रही है, समझ रही है कि उसे यूं ही परेशान किया गया है.

▣

दूसरे दिन सवेरे का अखबार केंद्रीय मंत्रिमंडल के संकट, चीन-वियतनाम के तनाव और कुछ अफ्रीकी देशों के अंतर्युद्ध की खबरों से भरा हुआ था. अपने इकलौते लड़के के इंडियन-फारेन सर्विस में चले जाने के बाद कई साल से मि. टंडन विदेशी मामलों का और देश की फुनगी वाली राजनीति का अध्ययन करना अपना पारिवारिक दायित्व समझने लगे थे और इस क्रम में वे ऐसी खबरों को बड़े गौर और समझ से पढ़ा करते थे. पर उनकी अनमनी तबियत इन खबरों में आज रम नहीं पायी और अचानक उन्होंने अपने को अखबार के तीसरे पन्ने पर स्थानीय समाचार पढ़ते हुए पाया. उन्हें अचरज हुआ कि उन्हीं के शहर में, सरासर उन्हीं के उच्चवर्गीय मुहल्ले से तीन किलोमीटर पर, रात को दो हत्याएं हुई हैं, कई जगह राहजनी और डकैतियां पड़ी हैं और सारा शहर अराजकता के आतंक से कांप रहा है. वे तय नहीं कर पाये कि यह सब पिछली रात ही में हुआ है या पहले से बराबर होता आ रहा है. इसके लिए उन्होंने पिछले अखबारों को पलटना चाहा पर उन्हें अपने मन की गिरावट ग़ैरवाजिब जान पड़ी और वे अखबार के चौथे पन्ने पर अपना ध्यान केंद्रित करने लगे जहां इजराइल और मिस्र के संबंधों पर किसी विदेशी पत्रकार का ज्ञानवर्द्धक लेख छपा हुआ था.

▣

रुची चुपचाप उनके पीछे आकर खड़ी हो गयी थी. उन्होंने उसकी ओर देखा और उत्साह से कहा, "हलो बेबी!"

रुची ने मुस्कराकर इस उत्साह को कबूल किया, कहा, "पा, मुझे क्या एक बजे तक आप ब्रिटिश काउंसिल लाइब्रेरी से ले लेंगे?"

"क्यों? तुम्हें खुद लौटने में कोई दिक्कत है?" कहते ही वे सकुचा गये, रुची के कुछ कहने के पहले ही बोले, "कोई बात नहीं, मैं उधर जाऊंगा ही, तुम्हें लेता आऊंगा."

पर रुची ने कहा, "आपको परेशानी होगी पा, छोड़िए, मैं कोई स्कूटर कर लूंगी."

उन्होंने उसे समझाने की कोशिश की, पर रुची खुद अपनी ही बात मजबूती से काटते हुए इसी पर तुली रही कि उन्हें तकलीफ़ करने की जरूरत नहीं है.

उस शाम अचानक बादल घिर आये, हवा बहुत तेज बही और बिजली की तलवारें बराबर लपलपाती रहीं और मि. टंडन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सड़क पर वक्त के पहले से ही घिर आये अंधेरे को देखकर कारपोरेशन वालों को फोन किया कि उनके उधर की स्ट्रीट-लाइट तुरंत जलनी चाहिये. पर उन्होंने सलाह दी कि उन्हें बिजली कंपनी के पथ-प्रकाश-विभाग से संपर्क करना चाहिये, और बिजली कंपनी के उपर्युक्त विभाग ने उन्हें बताया कि मामला पेचीदा है, कि किसी ठेकेदार के बिल का भुगतान नहीं हुआ है, कि ट्रांसमिशन लाइनों में कोई गड़बड़ी है जिसे ठीक होते-होते आठ-दस दिन लग जायेंगे.

सारी बात असहनीय थी और इस तर्क से समझौता करना कि शहर के इस हिस्से का भाग्य और भविष्य एक लद्धड़ नौकरशाही की मुट्ठी में है, उन्हें बड़ा अपमानजनक जान पड़ा. पर पी.ए. वगैरह की मदद के बिना अनजाने जूनियर अफसरों को फोन करना और बार-बार उनसे खुद अपनी भूतपूर्व सरकारी हैसियत का ज़िक्र करना कुछ कम अपमानजनक नहीं था. इसलिए मि. टंडन ने सीधे राज्य विद्युत परिषद के चेयरमैन को फोन करने का फैसला किया और दूसरा फैसला यह किया कि वे आज क्लब नहीं जायेंगे. जैसा कि डर था, राज्य विद्युत परिषद् के चेयरमैन उन्हें फोन पर नहीं मिले, वे इटली या जर्मनी गये हुए थे और उधर से जवाब देने वाली यह नहीं बता सकी कि इस वक्त चेयरमैन का काम कौन देख रहा है. मि. टंडन के इसरार करने पर एक कन्वेंटी अंग्रेज़ी आवाज़ ने कहा, "यह बंगला है, बोर्ड का आफ़िस नहीं है!"

झल्लाकर उन्होंने रिसीवर पटक दिया और सड़क की दिशा में अपना ध्यान घुमाया. तब तक अंधेरा फैल चुका था. उन्होंने माली को पुकारा और उसके आ जाने पर कहना चाहा कि देख आओ, सड़क पर क्या आज भी कोई खड़ा हुआ है. पर यह कहते हुए उन्हें हिचक लगी. लगा, जैसे अपने घरेलू रहस्य में वे माली को यूं ही साझा देने जा रहे हैं. माली से उन्होंने कहा, "मेम साहब क्या कर रही हैं?"

"कमरे में हैं, बाजा सुन रही हैं."

उन्होंने ध्यान से सुना, सचमुच ही अंदर से वायलिन की आवाज़ आ रही थी. उषाजी मौसम के हिसाब से कोई चुना हुआ राग वायलिन के टेप पर सुन रही होंगी. संगीत ने मि. टंडन को सहलाया, उनकी तनी हुई नसें ढीली होने लगीं. उसी के साथ उनके मन में यह अंधविश्वास जागा कि इस हवा और बादल और वायलिन के माहौल में आज कुछ भी असहज नहीं होगा. माली को अगले हुक्म की इंतज़ार में खड़ा हुआ छोड़कर वे बरामदे में टहलने लगे, फिर धीरे-धीरे टहलते हुए फाटक के पास गये. सड़क सुनसान और अंधेरी थी, पर सामने के बंगले की रोशनी के वृत्त-वर्ग-त्रिकोण उस पर इधर-उधर छितरे पड़े थे. उन्होंने छुटकारे की सांस ली और तुरंत अनुभव किया कि मन को भुलावा भर देना है. जहां पहली नज़र में उन्हें बंगले का नुक्कड़ वीरान दिखा था वहीं खंभे से टिककर उन्हें किसी के खड़े होने का आभास मिला, कुछ ही पलों बाद किसी ने वहां सिगरेट जलायी.

मि. टंडन ने अंदर आकर फाटक बंद कर लिया और उसी तरह धीमी चाल से बरामदे में आ गये. पत्नी के कमरे में पहुंचकर वे आराम कुर्सी पर बैठ गये और कुछ देर टेप पर वायलिन की धुन सुनते रहे. उषाजी ने कहा, "अच्छा हुआ आज तुम क्लब न[illegible] गये."

"रुची कहां है?"

"अपने कमरे में. जैसे ही उसे मालूम हुआ कि वह गुंडा [illegible] खंभे के पास आकर खड़ा हो गया है, वह मेरे पास आकर बिग[illegible] लगी. ठीक ही तो कहती है, तुम किसी से कुछ कहते क्यों नहीं[illegible]

कुछ कहे बिना वे कमरे से उठकर टेलीफोन की ओर चल दि[illegible]

▣

ऊंची नौकरी का फ़ायदा सिर्फ़ बड़े फ़ैसले करने और भारी तनख़्[illegible] लेने ही में नहीं है,असली फ़ायदा यह है कि बराबरी और [illegible] हैसियत के सैकड़ों लोगों से घरेलू रिश्ते बन जाते हैं और जिन[illegible] मोटर के झंडे और चपरासी के झब्बे को छोटे स्कूलों के ब[illegible] आंख फैलाकर देखते हैं. उन्हीं को ऊंची नौकरी वाले का ब[illegible] 'अंकल' या 'ताऊजी' कहता हुआ आनंदपूर्वक ज़िंदगी की सि[illegible] लाइंस में विहार करता है. जो भी हो, मि. टंडन को शायद सूझ[illegible] भी नहीं, पर यह बात रुची ने उठायी और उससे सुनकर उषा[illegible] ने कहा, "डा. मनचंदा से क्यों नहीं मिलते? रुची कह रही थी[illegible] उसके मांटी अंकल आजकल यहीं है न."

मांटी अंकल उर्फ डा. मनचंदा का शोध-प्रबंध अपराध-शास्[illegible] पर था और उसके सहारे, जब वे एक छोटे ज़िले के पुलिस कप्ता[illegible] थे, वे पी.एच.डी. हो चुके थे. वही अब इस शहर में खुफ़ि[illegible] पुलिस के डी.आई.जी. थे. मि. टंडन को सुझाव पसंद आया, म[illegible] ठोककर बोले, "मेरी अक्ल को भी क्या हो गया है कि मनचं[illegible] की याद ही नहीं आयी!" और टेलीफोन का झंझट झेले बिना [illegible] उसके बंगले पर पहुंच गये. वहां मनचंदा नहीं मिले, वे बाहर ग[illegible] हुए थे (पता नहीं उषाजी, क्या हो गया है कि सारे अफ़सर अ[illegible] बाहर ही बाहर रहा करते हैं). सांत्वना इससे मिली कि मिसे[illegible] मनचंदा पहले की तरह हंसकर मिलीं, उन्होंने चाय पिला[illegible] रुची और उषाजी के हाल-चाल पूछे और जब मि. टंडन [illegible] खंभे के पास खड़े होने वाले गुंडे का ज़िक्र किया तो उन्होंने हमे[illegible] की तरह समझदारी से सलाह दी कि भाई साहब, आपके पेट [illegible] बात पचती नहीं, इसलिए कहती हूं, क्लब में कहीं इसका ज़ि[illegible] न कीजिएगा. नहीं तो हज़ार मुंह और हज़ार बातें. लोग रुची [illegible] ही बारे में उल्टे-सीधे अटकल लगाने लगेंगे.

मि. टंडन ने मन ही मन इस सलाह की दाद दी क्यों[illegible] एक बार उनके मन में भी आया था कि कहीं ऐसा तो नहीं [illegible] कभी किसी कमज़ोरी के क्षण में रुची ने ही इस आदमी को बढ़ा[illegible] दिया हो—आख़िर वह उसके लिए कालिज के पास भी [illegible] देखा गया था, यह दूसरी बात है कि रुची इस बात पर नि[illegible] के साथ कुछ नहीं कहती. जो भी हो, रुची से इस बारे में खुल[illegible] बात करने की उनमें हिम्मत नहीं थी.

इसी के साथ, उन्होंने मन ही मन अपने को कोसा भी, क्यों[illegible] वे सचमुच ही क्लब के दो-एक साथियों से इसका ज़िक्र कर चु[illegible] थे और उन्हें लगा कि वे अब तक न जाने कितने उल्टे-सीधे अटक[illegible] लगा चुके होंगे. शायद इस वक्त भी वे अपनी बीवियों से क[illegible] रहे होंगे, "क्या पता कौन है! रुची का ही कोई ठुकराया हु[illegible] दोस्त होगा! देखती जाओ!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन का अखबार कुछ शांत था. तीसरे पन्ने पर शहर में लड़कियों को छेड़ने या रिक्शे पर जाती हुई महिलाओं के कंठाभरण छीनने की घटनाएं नदारद थीं. छुरेबाज़ी और गुंडा गिरोहों के आपसी महायुद्धों का ज़िक्र न था. उनकी जगह छात्रों के आरक्षण विरोधी आंदोलन ने ले ली थी. सरकारी मोटरों पर पथराव और बसों के जलाने का ज़िक्र था. मि. टंडन ने कहा, "द कंट्री हैज़ गान टू डाग्स!" और अनायास ही अपने फ़ैसले की पुष्टि के लिए वे अखबार को पलट कर सातवें पन्ने पर पहुंच गये. वहां के अंचलीय समाचारों में डकैती, हत्या और महिलाओं के शीलभंग की घटनाएं थीं. उन्होंने अखबार पटक दिया. धार्मिक न होते हुए भी बोले, "ओह गाड!"

मौसम अजीब चिपचिपा-सा हो रहा था, आसमान पर बादल छाये थे और हवा बंद थी. सामने लॉन में चटकीले फूल सुस्त से दिख रहे थे. उनकी तबियत गिरने लगी. मौसम, अखबार, मनचंदा की ग़ैरहाज़िरी, आने वाली शाम का डर, रुची का निष्कलंक चेहरा—सबने मिलकर उन्हें बहुत बेचैन बना दिया. उनके ख़्यालात भटकने लगे. उनकी कल्पना में उन्हें अपना बंद फाटक भी खुला दीखने लगा, उससे कुछ गुंडे–सिनेमा के गुंडों की पोशाक में—तहमद और बनियान पहने, हाथों में छुरे चमकाते, अंदर घुसे. इस दिवास्वप्न से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने कसकर आंखें मूंद ली, सर के झटके के साथ उन्हें दुबारा खोला और फिर अपनी कमज़ोरी पर खीझ के साथ मुस्कराये. इस सबके बावजूद कहीं कुछ खोया हुआ लगा. पहले का दृश्य पहले जैसा नहीं लगा. सामने का लॉन, बरामदे में रंगीन गद्दों वाली बेंत की पेटेंट कुर्सियां, कमरों में करीने से लटके हुए पर्दे, शांत, सुस्निग्ध वातावरण, उन्हें सब अवास्तविक-सा लगा, उन्हें लगा कि वे किसी जहाज़ के सजे हुए दिलकश कैबिन में बैठे हुए हैं और वह जहाज़ डूब रहा है.

तभी माली ने आकर उपाजी से कुछ धीरे से कहा. मि. टंडन चिढ़कर बोले, "ज़ोर से क्यों नहीं बोलता?" तब उपाजी ने बताया कि उसकी जुरअत तो देखिए, अभी पूरा अंधेरा भी नहीं हुआ है और वह आज एक साइकिल लेकर आया है. हमारी चहारदीवारी से उसने साइकिल टिका दी है और खुद वहीं खंभे के पास खड़ा हुआ है."

उन्होंने माली की ओर सवालिया निगाह उठायी, माली ने कहा, "दुबला-पतला आदमी है. यही पचीस-छब्बीस साल का होगा. सरकार कहें तो अभी जाकर उसे ठीक कर दूं!" मि. टंडन ने उसे मना किया. थाने से फोन पर आज उन्होंने इतने तीखेपन से बात की कि इसका स्पष्ट असर हुआ. पुलिस का उड़नदस्ता सड़क पर तुरंत पहुंच गया. पर तब तक, जैसी कि आशा थी साइकिल और साइकिल-सवार वहां से ग़ायब हो चुके थे.

▣

"रुची बेटा, तुम्हें ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए, मैं अपनी ओर से कुछ भी नहीं कह रहा हूं. पर अब मैं पुलिस को बाज़ाब्ता इस मामले में लाना चाहता हूं. इसलिए यह पक्का होना चाहिए कि उनके सवाल-जवाब में कोई ऐसी बात न निकले जिससे कि..!"

"पा, आप यही पूछना चाहते हैं न कि मैं उसे जानती हूं या नहीं? इसके लिए घुमा-फिराकर क्यों बोल रहे हैं? कहिए न,

इसमें भी मेरा ही कसूर है. चारों ओर जो कुछ हो रहा है. वह सब मेरा ही क़सूर है."

"रुची प्लीज़. . . . "

"पा, मुझसे बात मत कीजिए. आप हमेशा ही मुझे . . !"

"रुची, रुची. . . प्ली ऽऽऽ ज़. . " उनकी बातचीत यहीं रुक गयी. फ़ोन की घंटी बजी. क्लब का एक साथी बोल रहा था. कह रहा था कि भई, यह कैसी नाराज़गी है, एक हफ़्ते से तुम इधर आये ही नहीं. और. . . वह ईवटीज़र वाला मामला ठीक हो गया न?

उन्होंने तीखेपन से कहा, "कैसा ईवटीज़र?"

"सॉरी, पर तुमने कहा था. . . "

"वह मामूली बात थी. दरअसल, इधर मुझे कुछ. . . . "

"क्या हुआ भई? अब कैसे हो. . . . ?"

पर ऐसी बातों से माहौल की असहजता बढ़ती ही जा रही थी. पुलिस आती थी और चली जाती थी और उसके आने के पहले ही वह सड़क से ग़ायब हो जाता था. पर अब इधर एक नयी बात यह हुई थी कि पुलिस के निकल जाने के बाद उसी शाम वह ढिठाई के साथ फिर कहीं से सड़क पर आ जाता था—इतना ज़रूर है कि अब वह खंभे से बराबर टिका नहीं रहता था, इधर उधर टहलने भी लगा था. मनचंदा अभी बाहर से वापस नहीं लौटे थे, इसलिए खुफ़िया पुलिस का कोई आदमी उसके पीछे लगाने की योजना अभी योजना ही बनी हुई थी. पुलिस की दिलचस्पी घटती जा रही थी और थाने के टेलीफोन का सिपाही भी रूखी आवाज़ में कहने लगा था कि ठीक है साहब, इंस्पेक्टर साहब से कहे देते हैं. एकाध बार पुलिस वाले कहने पर भी उधर नहीं आये थे और वह शख़्स रात के दस बजे तक सिगरेट फूंकता हुआ वहां घूमता रहा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस शाम अचानक सड़क की बत्तियाँ जल उठीं व ट्यूबलाइट और बीच-बीच में मरकरी-वेपर के बल्बों ने जगमग दीवाली का समां बांध दिया. देखते ही मि. टंडनका मन हुलसित हो उठा. उन्हें यक़ीन हो गया कि अब सब ठीक हो जायेगा. उसी हुलास में वे गैरिज से गाड़ी निकालकर क्लब के लिए चले, सड़क पर धीमी रफ़्तार से गाड़ी चलाते हुए उन्होंने नुक्कड़ के खंभे को वीरान पाया. उन्हें सांत्वना मिली, पर वे जानते थे कि यह सांत्वना झूठी है. उन्होंने रफ़्तार बढ़ाने के लिए ऐक्सिलेटर पर ज़ोर दिया और उसी वक़्त उनके पांव का दबाव ढीला हो गया. उन्होंने देख लिया था कि खंभे से पचास गज दूर पेड़ के नीचे एक साइकिल खड़ी है और उस पर बैठा हुआ कोई सिगरेट फूंक रहा है.

उन्हें बहुत गुस्सा आया, अन्याय और आनाचार के खिलाफ़ उन्हें इतना गुस्सा पहले कभी नहीं आया था. वे चौराहे से घूमकर बंगले पर लौट आये. ब्रेकों पर अभूतपूर्व दबाव डालते हुए तेज़ी से घुमाकर उन्होंने गाड़ी खड़ी की. दरवाज़े को भड़ाम से बंद करते हुए वे अंदर पहुंचे और बोले, "हरामी के पिल्ले! साले! शरीफ़ों का रहना मुश्किल कर दिया है!"

ऐसी गाली उन्होंने बरसों बाद मुंह से निकाली थी.

उषाजी अब बहुत धीमे वाल्यूम पर गाना सुनने लगी थीं, बात करने के लिए उसे घटाना नहीं पड़ा. बोलीं, "आज भी खड़ा हुआ है?"

"हां, पर अब इस मामले से निबट ही लिया जाये. तुम माली के घर वालों की बात कह रही थीं न?"

"माली खुद ही कह रहा था. उसके गांव के कई लोग यहां रिक्शा चलाते हैं, कुछ खोंचा लगाते हैं. वे सब माली ही के आदमी हैं. कहता था कि साहब का इशारा हो जाये तो इस गुंडे को एक दिन में ठीक कर दें. कहता था कि किसी को पता नहीं चलेगा. जब उसे मालूम होगा कि बंगले के साहब भी कोई चीज़ हैं, वह अपने आप भाग जायेगा. कहता था कि उसके एक साथी का नाम बड़े से बड़े बदमाश भी जानते हैं, गांव से खून करके यहां आया है, नाम बदलकर पान की दुकान चला रहा है, उसका नाम ही सुन ले तो उस आदमी के पैर उखड़ जायेंगे."

माली के अयाचित सहयोग की बात पहले भी हो चुकी थी. जब पहली बार यह तजवीज़ उनके सामने आयी तो उस रात वे ठीक से सो नहीं सके थे. उन्हें लगा था कि साफ़-सुथरे राजपथ को छोड़कर वे टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगों में भटकने जा रहे हैं. उन्हें डर था कि जो लोग माली के साथ इस गुंडे को ठीक करने के लिए आयेंगे, वे उनसे सारी उम्र मुआवज़ा खींचने की कोशिश करेंगे, अपराध-जगत में कहीं न कहीं उनका भी कोना रिज़र्व हो जायेगा, उनसे क़दम-क़दम पर मदद मांगी जायेगी, सिफ़ारिशें करायी जायेंगी, उन्हें ज़मानतों का इंतज़ाम कराना होगा, उनसे नक़द रुपये की उम्मीद की जायेगी, मि. टंडन उनके ब्लेकमेल का निशाना बन जायेंगे. उस दिन माली की तजवीज़ उन्होंने घृणापूर्वक नामंज़ूर कर दी थी.

पर आज उन्होंने कहा, "ठीक है, माली को बुला लो, बात कर ली जाये, कल तक इस मामले को साफ हो जाना चाहिये."

पहले उन्हें यह भी हिचक थी कि उससे उनके और माली के बीच एक नये ढंग के गंदे समीकरण की शुरुआत होगी. इस सम[य] घुमड़ते हुए गुस्से के बवंडर में यह हिचक का तिनका न जा[ने] उड़कर किस आसमान में खो गया.

▣

पर यह सब बेकार साबित हुआ; दूसरी शाम को वह आया [ही] नहीं, सड़क पर बिजली की निर्मल रोशनी में सुख और शां[ति] छलकती रही और साइकिल और उसके सवार की वहां छा[या] भी नहीं पड़ी. माली के छिपे हुए साथी तीन-चार घंटे की मुस्तै[दी] के बाद निराश होकर वापस चले गये, फिर तीसरी, चौथी औ[र] पांचवीं शाम को भी यही हुआ. सड़क पर किसी का इंतज़ा[र] करने वाला गुंडा, लगता था, मुहल्ला छोड़कर कहीं दूर च[ला] गया है.

पर टंडन-परिवार को अभी उससे छूट नहीं मिली थी. ज[ब] माली के गांव वाले शाम को उनके बंगले के इर्द-गिर्द रहते, उनक[ी] अकुलाहट और आशंका अपनी हद का बांध तोड़ने लगती, कु[छ] होने और सुनने की व्यग्रता में बंगले की किताबें, संगीत के टे[प] और रिकार्ड, ताश की गड्डियां और आनंद के सभी साज-साम[ान] बेजान से पड़े रहते. टंडन-परिवार अब उस अजनबी आदमी [से] नहीं, खुद अपने आतंक की गिरफ़्त में छटपटा रहा था.

▣

अचानक दूसरे दिन अखबार की एक खबर और फोटो ने सब कु[छ] सुलझा दिया. उनकी नयी संभ्रांत कालोनी की यह सड़क आ[गे] जाकर एक ऐसे रमणीक स्थान से निकलती थी, जहां नदी-नाले थे, नया जंगल उगाया गया था, लता-वितानों के मनोरम कुंज थे, हिरनों की वनस्थली थी, सुरम्य टीले थे, पिकनिक की एकां[त] और आकर्षक घाटियां थीं, संक्षेप में, जहां पर्यटन और वन विभा[ग] ने मिलकर पर्यटकों के स्वर्ग का सृजन किया था. वहीं नाले में द[बी] हुई एक टूटी साइकिल पायी गयी थी और किनारे पर झाड़ी [में] एक आदमी की सड़ती हुई लाश भी मिली थी. अखबार में इ[न] दोनों के फोटो छपे थे और एक पैराग्राफ में हत्या का विवरण [भी] आया था. बताया गया था कि लाश किसी अजनबी की है, उसक[े] कुल-गोत्र का पता लगाया जा रहा है. हत्या बड़े नृशंस ढंग से क[ी] गयी है, शरीर पर छुरे के पच्चीस-तीस घाव हैं, आदि-आदि.

▣

तय नहीं था कि यह वही आदमी है या कोई और, पर अखबार [में] जिस दिन साइकिल और लाश की तस्वीरें छपीं उसी दिन [से] बंगले के पास से माली के साथियों की ड्यूटी हट गयी. उसी दि[न] मि. टंडन ने उषाजी से इस रहस्य की कुछ दूसरी संभावनाओं पर भी बातचीत की. उन्होंने कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि इस आदमी की दिलचस्पी हमारे घर में न होकर सड़क पार उस इमारत में रही हो, जहां अभी हाल में उस बैंक की सायंकालीन शाखा खुली है. उषाजी ने भी जवानी में पढ़े हुए कुछ जासूसी उपन्यासों और कुछ अपराध-कथाओं की याद करके कहा कि हो सकता है, क्योंकि कई बार डाकुओं ने बैंक पर डाका डालने के पहले वहां के काम-काज के तरीकों और आसपास के माहौल का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधाकृष्ण : एक श्रद्धांजलि

सामाजिक जीवन की विकृतियों पर करारा व्यंग्य करने वाले प्रेमचंद पीढ़ी के प्रतिभाशाली कथाकार श्री राधाकृष्ण छियासठ वर्ष एक मास इक्कीस दिन की आयु में गत 3 फरवरी को एक लंबी अस्वस्थता के बाद रांची में चल बसे. मातृ-पितृ विहीन बालक होने के कारण प्राइमरी स्कूल से आगे की शिक्षा नहीं पा सके थे. पर, वे बराबर ज़िंदगी की खुली किताब पढ़ते रहे. सन् 1945 में रांची से निकलने वाली बिहार सरकार की साप्ताहिक पत्रिका 'आदिवासी' के संपादक नियुक्त होने से पूर्व उनके भयानक गर्दिश के दिन बीते थे. उनकी बहुचर्चित कहानी 'रामलीला' भोगे हुए यथार्थ की उपज है. उनके अन्य उपन्यासों में भी, जैसे 'फुटपाथ' एवं 'बोगस' में, हास्य-व्यंग्य का मुख्य स्वर है. 'परिवर्तित', 'चंद्रगुप्त की तलवार', 'मास्टर टेलर', 'लैला की शादी', 'प्रोफेसर भीम भेटाराव' में उन्होंने समसामयिक जीवन की विसंगतियों का बड़े रोचक ढंग से पर्दाफाश किया. हास्य-व्यंग्य-विनोद के क्षेत्र में वे अपनी पीढ़ी के एक सशक्त कथाकार थे. कई हास्य-व्यंग्य वाली रचनाएं उन्होंने 'घोष-बोस-बनर्जी-चटर्जी' नाम से लिखीं हैं. वह मुश्किल से तेईस वर्ष के रहे होंगे जब 1935 में प्रेमचंद ने राधाकृष्ण की गिनती अपने समय के हिंदी के श्रेष्ठ पांच कथाकारों में की थी. राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित उनके 'सनसनाते सपने' उनकी एक महत्वपूर्ण व्यंग्यात्मक कृति है, जिसमें हमें हमारे सामाजिक-राजनीतिक जीवन पर एक कार्टूनिस्ट की पैनी दृष्टि मिलती है. भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' जैसी इनकी 'रूपांतर' एक महान औपन्यासिक कृति है. गत वर्ष 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' द्वारा इनके कहानी-संग्रह 'गेंद और गोल' पर अढ़ाई हज़ार का नकद पुरस्कार प्रदान किया गया था.

अन्य विधाओं में भी उन्होंने लिखा था, जैसे 'भारत छोड़ो' नाम का एक नाटक. एक बिसार दिये गये सच्चे सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्त्ता की एक पुस्तक की समीक्षा 'नयी धारा' में करते हुए उन्होंने लिखा था—"हमारे राजनैतिक नेतागण नितांत अविश्वास के वातावरण में रहते हैं. वे सब जगह पहुंच तो पाते नहीं मगर सब जगह की बातें उनके पास तक पहुंचती हैं. बातें पहुंचती हैं तो इनमें नमक-मिर्च खट्टा-चर्परा भी मिला हुआ होता है. कार्यकर्त्ताओं की प्रशंसा तो उनके पास पहुंचती नहीं, निंदा करने वाले सहस्त्रमुख होकर निंदा करते हैं. बात को बतंगड़, हवा को बवंडर और पद को पदमसेन कह दिया जाता है." ऐसे उद्‌गार राधाकृष्ण ने मृत्यु से छह माह पूर्व प्रकट किये थे. सही व्यंग्यकार निर्मम और निष्पक्ष होकर व्यंग्य लिखता है. उसकी तलवार दुधारी होती है. आज तक हमारे कुछ व्यंग्य लेखक एक ही तरफ वार करते हैं, तो वे अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाते हैं. कुछ खास व्यक्तियों को ममतावश बचाते हुए कुछ खास व्यक्तियों पर ही, विशेषकर राजनेताओं पर, बार-बार प्रहार करना राधाकृष्ण जैसे श्रेष्ठ व्यंग्य-कथाकार को नहीं आता था. वे अपने पैने व्यंग्य, रोचक प्रसंगों एवं मनोरंजक मुहावरों के लिए सदा याद किये जायेंगे. □

महीनों गहराई से अध्ययन किया है. जो भी हो, वे अब निश्चित थे और बैंक की डकैती की संभावना उनके लिए अब एक रोमांचपूर्ण फिल्म जैसी लग रही थी.

दूसरे दिन से ही माली बगीचे और फूलों की पारंपरिक सेवा में तल्लीन हो गया. मि. टंडन क्लब जाने लगे. उषाजी ऊंचे वाल्यूम में मुनव्वर अली खां का शुद्ध कल्याण और बी.जी. जोग का वायलिन सुनने लगीं. रुची जगमग सड़क के उस पार उर्मिला के बंगले में स्वेच्छापूर्वक निधड़क आने-जाने लगी. फूलों और पेड़ों और सोफों और परदों की कांति लौट आयी. आतंक की आवाज़ें खत्म हुईं. उत्पात-उल्काएं शमित हुईं. दिवाकर सुप्रभ और आकाश निर्मल हो गया. मयंक-मरीचियां रुचिर हो गयीं. मि. टंडन के आई.एफ.एस. पुत्र की चिट्ठियां फिर से विदेशों की उत्कंठापूर्ण वार्ता का विषय बनने लग गयीं. रुची ने अपने चित्रों की एकल प्रदर्शनी की तैयारी शुरू कर दी.

मि. टंडन की अखबार के पहले पृष्ठ में फिर से तृष्णा जागी और तीसरे और सातवें पृष्ठ का भयानक संसार एक कुस्वप्न की भांति उन्हें भूलने लगा; यहां तक भूला कि जिस दिन अखबार के तीसरे पृष्ठ पर यह छपा था कि लाश संभवतः फलां नक्सलवादी की है और हत्या संभवतः आपसी मतभेद के कारण हुई है, उस दिन मि. टंडन अखबार के पहले पृष्ठ पर चीन और वियतनाम के संघर्ष में ही उलझे रहे, वे यह खबर नहीं पढ़ पाये; न यही जान पाये कि बिजली की जगमगाहट के बावजूद चहारदीवारी के उस पार कोई तब्दीली नहीं आयी है. □

● प्रशासक निवास, नगर महापालिका, इलाहाबाद (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्सी

■ ठाकुरप्रसाद सिंह

शुरू में कुर्सी में केवल एक पैर था. कलियुग के धर्म की तरह उसी एक पैर पर वह कुर्सी तीन महीने तक खड़ी रही. उस पर बैठने वाले की घोषणा हो चुकी थी लेकिन उस समय उस पर बैठना संभव नहीं था. बड़ी तलाश के बाद कार्यालय के स्टोर में किसी कुर्सी का एक पैर और मिला. उसे उस कुर्सी में जोड़ दिया गया. अब कुर्सी विश्वास के साथ खड़ी हो गयी.

इस बीच जब उस पर बैठने वाले के लिए और जगहों पर रखी कुर्सियां गायब हो गयीं तब वह लाचार हालत में उस कुर्सी की तरफ आया. वह कुछ देर तक खड़ा उस कुर्सी को घूरता, हैरत करता रहा कि केवल दो पैरों पर वह कुर्सी खड़ी कैसे है! जब उसे कुछ समझ में नहीं आया तो उसने कमरे के दरवाज़े से लगी तिपाई पर बैठे-ऊंघते चपरासीनुमा आदमी से इसका भेद पूछा. ऊंघता हुआ आदमी नींद टूट जाने पर खीझ तो गया [...] सामने एक लहीम-शहीम आदमी [...] देखकर अदब से खड़ा हो गया. उस [...] को चपरासीनुमा उस आदमी की [...] अदा भा गयी. उसने उसके कंधे थप[...] फिर पूछा, "आखिर यह कुर्सी केव[...] पैरों पर खड़ी कैसे है?"

चपरासीनुमा आदमी ने आश्च[...] उसकी ओर देखा फिर उसकी बुद्धि[...] तरस खाते बोला, "मेरी पच्चीस [...] पुरानी नौकरी है, इस बीच मैंने ऐसे [...] ही दरवाज़ों पर हाज़िरी दी है [...] भीतर कुर्सियां होती थीं. मुझे [...] कुर्सियां बहुत कम दिखलाई पड़ीं [...] पूरे चार पैर थे. हां, ऐसी कई कु[...] देखने में ज़रूर आयीं जिनमें पाये [...] नहीं; फिर भी उन पर लोग वर्षों [...] रहे".

उसने हैरत से उसकी ओर देखा [...] कहा, "यह तो असंभव है. ऐसा कैसे [...] सकता है?"

"क्यों, क्या सोमनाथ की मूर्ति [...] सहारे पर खड़ी थी? उसे जब मह[...] गज़नवी ने पहली बार देखा तो वह [...] में झूलती हुई दमक रही थी." चपरा[...] बोला.

उसने इस बात पर विश्वास नहीं [...] किताबों में यह बात लिखी ज़रूर थी, [...] किताबों में तो बहुत कुछ लिखा होता [...] उसका मन नहीं माना. वह खड़ा [...] रहा.

"शतरंज के खेल में बादशाह की [...] के नीचे खड़ा एक अदना-सा प्यादा [...] कभी बादशाह की जान का ग्राहक [...] जाता है. बादशाह चाह कर भी [...] काट नहीं सकता. बस मौका [...] इधर-उधर हटकर अपनी जान ब[...] है." चपरासी ने बात नज़दीक लाते [...]

उसने कहा, "यह तो ज़ोर का [...] है." उसने फिर तर्क दिया, "प्यादा [...] मजबूत मोहरे के ज़ोर पर होगा. [...] हालत में कभी-कभी बादशाह को [...] भागने का मौका नहीं मिला करता. [...] मात हो जाती है."

चपरासी ने मुस्कराते हुए कहा, [...] कुर्सी भी ज़ोर पर खड़ी है. इस पर [...] दार ही बैठेगा." चपरासी को जैसे [...] याद हो आया. उसने बेचैनी से इधर-[...]

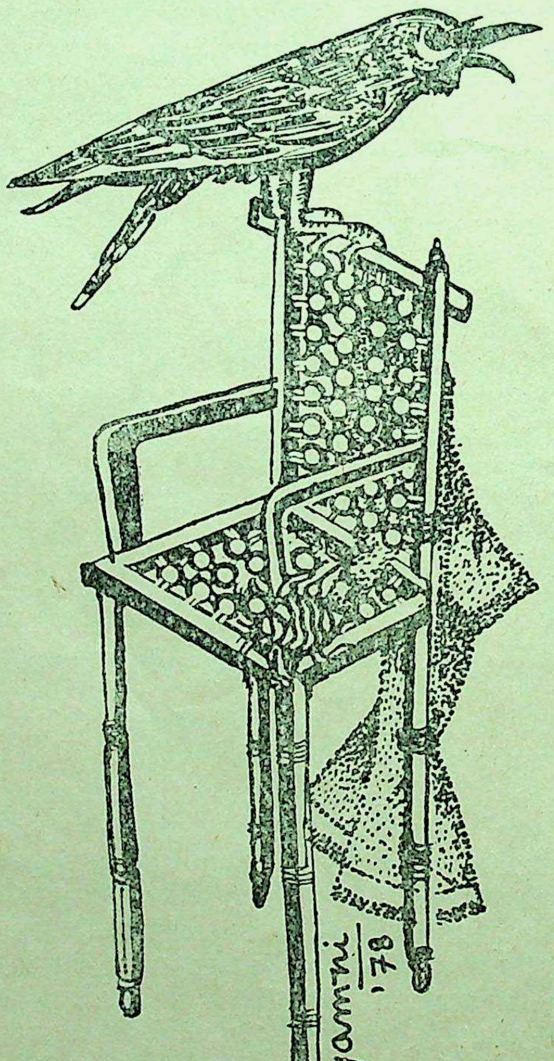

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा जैसे किसी को खोज रहा हो.

"किसी की तलाश है?" उसने पूछा.

"उस ज़ोरदार आदमी की जो इस कुर्सी पर बैठेगा. सुना है वह आने वाला है." चपरासी ने कहा.

"वह ज़ोरदार आदमी अगर यहीं खड़ा हो तो?"

चपरासी ने उसकी ओर इम्तहान लेने वाली नज़र से देखा फिर कहा, "अगर हो तो उसे बैठ जाना चाहिए. डरना नहीं चाहिए. यह कुर्सी देखने भर के लिए दो पांव की है."

"बैठकर देखना है. उसके बैठ जाने के बाद ही आफिस के इंचार्ज को बुलाया जाये." उसने साहस करके कहा.

चपरासी ने सवालिया निगाह से उसकी ओर देखा. जैसे पूछ रहा हो, "ऐसा क्यों?"

स्थिति को स्पष्ट करते हुए उसने कहा, "अगर वह बैठते ही न गिरा तो लोगों को बुलाना ठीक होगा. अगर गिर पड़ा तो किसी को बुलाने की ज़रूरत नहीं."

"गिर जायेंगे तो कोई आयेगा ही नहीं. लोग तभी आते हैं जब आदमी गिरता नहीं." चपरासी ने कहा.

▣

उसने भीतर जाकर दरवाज़ा बंद कर लिया और साहस करके कुर्सी की पीठ पर हाथ रखा. कुर्सी ज़रा-सी हिली. उसका हिलना समझ में आ गया. वह गिरी नहीं, उसके ऊपर बैठा जा सकता है. साहस करके उसने कुर्सी अपनी ओर खींची. पूरा भुगतान लेकर आने वाली औरत की तरफ वह बिल्कुल उसकी बगल में सरक आयी. वह रोमांचित हो गया और बिना किसी हिचक के उस पर बैठ गया. कुर्सी ने एक हिचकोला लिया और बिल्कुल मेज़ के बीच में उसे खींच ले गयी, जहां दो बटन दिखाई पड़े. दोनों पैर टेबल के नीचे लगी आड़ी लकड़ी पर जमाकर उसने दोनों बटन एक साथ दबा दिये.

उसके बाद उसे कुछ नहीं करना पड़ा. कुर्सी के साथ उसकी भोग-यात्रा शुरू हो गयी.

बाहर खड़ा हुआ चपरासी कूदकर खिड़की के रास्ते कमरे में आ गया. बड़ी ही मुस्तैदी से उसने बंद दरवाजा खोल दिया. दरवाज़ा खुलते ही तरह-तरह के लोग कमरे में आकर तरह-तरह की हरकतें करने लगे. वह झेंप गया लेकिन कुर्सी मुस्कराती रही. इसके पहले यह खेल वह कई बार खेल चुकी थी, उसे इसमें मज़ा आ रहा था.

धीरे-धीरे उसकी भी हिचक दूर हो गयी, उसे अब यह महसूस होने लगा कि जब कुर्सी ज़ोर पर खड़ी है तो उसमें दो पाये हों या चार, क्या फर्क पड़ता है! दिखाने के लिए उसने मेज़ पर पड़े डेली-पेपर गोल मोड़ लिये और उन्हें पिछले पायों की जगह लगा दिया. उस बड़े दफ्तर में रहने वाला हर आदमी इससे सहमा हुआ लगा! जिन्हें किसी दिन कुर्सी के गिर जाने की आशा थी वे निराश हो गये. अपनी चालाकी पर वह मुस्कराया.

जब उसने कागज़ के पायों को निकालना चाहा, तो वे नाराज़ होने लगे. उसने घबराकर हाथ खींच लिया और यह मान कर निश्चित हो गया कि कुर्सी बिल्कुल ठीक हो गयी है. उसने बैठने का आसन बदल दिया. उसके चेहरे पर छायी घबराहट छंट गयी. वह मुस्कराकर बातें करने लगा. उसने अपनी प्राइवेट सेक्रेटरी की नयी साड़ी के बूटे पहली बार काफी ध्यान से देखे और उसे अपना जूड़ा और ढीला बांधने के लिए कहा.

दूसरे दिन वह तेज बच्चे की तरह अपना होम-वर्क ठीक से करके आयी. उसके नाखून पर नेल-पालिश भी दिखायी पड़ी.

वह उसे बैठे देखता रहा और वह शार्ट-हैंड की कापी पर तरह-तरह की रेखाएं बनाती रही. मौका देखकर उसने कार्यालय के एक कर्मचारी की हल्की-सी शिकायत भी जड़ दी.

तीसरे दिन उसने हाज़िरी रजिस्टर उसके सामने रखा, जिसमें जगह-जगह लाल निशान लगे थे. उसे मज़ा आने लगा. उसने सेक्रेटरी से पूछा, "क्या उसकी नेल-पालिश का रंग कच्चा है?"

वह झिझकी, फिर बोली, "आपको कैसे लगा?"

"रजिस्टर पर लगे लाल निशान देख कर...!" भेद खोलने वाली चतुराई से उसने कहा.

वह मुस्करायी, फिर बड़ी खूबसूरती से उसने अपनी दो अंगुलियां लो-कट ब्लाउज के भीतर डालीं और एक छोटी-सी सलाईनुमा बाल-पेन निकालकर दिखायी, फिर बोली, "यह निशान इस कलम के हैं."

उसे लगा सामने बैठी लड़की, लड़की नहीं है, शेरनी है. वह शिकार करना सीख रही है. उसके नाखूनों की खरोंचें जहां भी लगेंगी, खून चुह-चुहा आयेगा.

उसने प्रथा के अनुसार उस कार्यालय के अधिकारियों की बैठक बुलायी. वे एक-एक करके आये. सबसे पहले एक तेज चलने वाला अधिकारी, उसने घड़ी की ओर देखकर गुड-मार्निंग कहा—तब तीन बज रहे थे. दूसरे अधिकारी ने शेरवानी पहन रखी थी, वह स्वतंत्रता संग्राम-सेनानी लगता था. उसने कुछ नहीं कहा और 'क्या फर्क पड़ता है' की मुद्रा में खड़ा रहा. तीसरा अधिकारी सिगरेट पीता घुसा, थाह लेता हुआ कि कितना फ्री हुआ जा सकता है. चौथा घबराया हुआ, यह उसकी टेकनीक थी. पांचवा फिर छठा, फिर सातवां, फिर कई एक, किसी में कोई विशेष बात नहीं, सभी प्रमोटेड, घिसे हुए!

▣

"बैठ जायें!" उसने आवाज़ को गोल करते हुए कहा. सभी दौड़कर बैठ गये, चपरासी ने दरवाज़ों, खिड़कियों के खिंचे हुए पर्दे फिर झटके. छल्ले बजे, धूल बिखर गयी. फिर एक स्विच दबाया; बाहर लालबत्ती!

उसकी कुर्सी उसकी पीठ तथा जांघ से और चिपक गयी, एक उत्तेजना उठाती हुई. उसका ब्लड-प्रेशर चढ़ने लगा.

रस्सी में सांप, सीपी में मोती, शंकराचार्य को तो दुनिया ही भ्रम लगती है. फिर अगर उसे दो पैर की कुर्सी एक औरत लगे तो उसका क्या दोष!

मीटिंग खत्म हो गयी—अगली बार फिर मिलने के लिए.

एकांत होने पर प्राइवेट सेक्रेटरी आयी. आज उसकी दृष्टि में रहस्य था.

"क्या बात है?" उसने पूछा.

"कुछ नहीं सर!" कहकर वह एकदम पास चली आयी फिर देखते-देखते कुर्सी में विलीन हो गयी.

कमरे में केवल हैवेंक्-सेंट की तीखी गंध भर रह गयी! □

● 31, गुलिस्ता कालोनी, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़े का नाम घोड़ा

उर्फ़ आज़ादी की तकलीफ

▣ गिरिराज किशोर

लोग मुझे घोड़ा समझते हैं और मानते भी हैं. दुनिया
अजीब चाल है. दुनिया के ये लोग आपस में काने को का
कहने से डरते हैं पर दूसरे को घोड़ा कहने के लिए इन
ज़बान लंबी भी है और खुली भी. अगर ज़बान पर जाया ज
तो मेरी ज़बान इन लोगों की ज़बान से कई गुना लंबी और त
होगी. पर मेरी मज़बूरी है कि मैं बोलता नहीं. पर जब
मुंह पर ही मुझे घोड़ा कहा जाता है तो मेरा मन दुख से
जाता है. घोड़े की जो इनकी परिभाषा है वह बड़ी हिकारत
है. इसीलिए मैं अपने को कभी घोड़ा नहीं कहलाना चाहता
सच पूछो तो जब लोग-बाग इस तरह का व्यवहार करते हैं
मेरी टांगें दुलत्ती झाड़ने के लिए कसमसा उठती हैं. पर
उतनी आसानी से नहीं झाड़ सकता. पेट पर बोझ बढ़ गया और
भी करीब-करीब बेकार हो गयीं. चूंकि यह मेरी अपनी बात
इसलिए मैं ही जानता हूं. वैसे ये लोग मेरी पिछाड़ी आने से ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं. ये लोग मेरी पिछाड़ी की समता अफसर की अगाड़ी से करते हैं. अफसर आदमी होता है, वह अगाड़ी मारता है. वैसे अब मैं दुलत्ती झाड़ने के पक्ष में नहीं. सोचता हूं अगर मैं भी वही करने लगूं जो ये लोग करते हैं, तो मुझमें और इनमें अंतर क्या रह जायेगा! मैं वही तो नहीं जो कुछ वे कहते या समझते हैं. वह भी तो हूं जिसे वे देख या समझ नहीं पाते. जो सामने देखा जाता है वही पूरापन नहीं होता. बस मैं बोलता नहीं, क्योंकि बोल पाता नहीं या सकता नहीं. वरना मैं भी अंदर से वही हूं जो ये सब घोड़ा कहने वाले हैं.

एक बात और है अगर मैं वह नहीं होता जो ये हैं, तो मैं वह सब कुछ कैसे सीख जाता जो इन लोगों ने मुझे मार-मारकर, मुर्गा बना-बनाकर सिखाया. अगर मैं संवेदनशील न हुआ होता और अपनी मजबूरी और इनकी ताक़त को समझता न होता तो इनमें से किसी को भी पास नहीं फटकने देता. मालिक ने तो मुझे अपने अस्तबल में भर्ती करके बड़े नत्थू पर छोड़ दिया था. और तब तक मेरी सुध नहीं ली जब तक उनकी परिभाषा के अनुसार मैं पूरी तरह घोड़ा नहीं हो गया. मेरा मालिक यद्यपि मुझसे बहुत खुश रहता है. कभी उसने अपने हाथ वाली चमड़े की कमची की नोंक तक मेरे शरीर से नहीं छुआयी. पर कभी-कभी ऐसा व्यवहार कर देता है कि दिल अंदर तक दुख जाता है. पर वह मालिक यानी 'नत्थुओं में सबसे बड़ा नत्थू' और मैं उसकी सवारी! कुछ कर नहीं पाता. वह समझता ही नहीं कि उसके व्यवहार से किसी दूसरे को दुख भी पहुंच सकता है.

मैं ज़रा-सी भी हुक्म-उदूली कर दूं या इधर मुड़ने के बजाय उधर मुड़ जाऊं तो शायद टुकड़े-टुकड़े करके फिंकवा दे. पर मैं इस सबके बावजूद अपनी पीठ उसकी सवारी के लिए सदा कसे रखता हूं. कभी कूद कर चढ़ता है, कभी रकाब पर पैर रखकर, जब जहां चाहे ले जाता है. जैसे चाहे हांकता है. लगाम उसके हाथ में है. लगाम भी ऐसी-वैसी नहीं दानेदार, मोटी! इसका भी मुझे कोई मलाल नहीं. भावना को तो समझे. अच्छे से अच्छा खाना और सजने के लिए साज़ दे देना ही तो सब कुछ नहीं. जब संकट-ग्रस्त होता है या जान के लाले पड़ जाते हैं, पानी या दलदल होती है, खाई आ जाती है तब उसे मेरी भावना का कुछ-कुछ ध्यान आता है. मेरी पीठ थपथपाता है. मेरे अयाल सहलाता है. मैं धुड़-धुड़ा देता हूं. वह 'शाबा' कहकर मेरा मनोबल बढ़ा देता है. इस बात के प्रति आश्वस्त करता है कि उसके लिए मुझसे अधिक कोई और नहीं. और वह मेरे सिवाय किसी पर विश्वास ही नहीं करता. इन बातों में मैं तत्काल आ जाता हूं. पर जब घर पहुंचकर वह मेरी पीठ पर से उतरकर, मुझे खड़ा छोड़कर, अपनी ख़्वाबगाह में चला जाता है तो समझ में आता है कि वास्तव में मैं क्या हूं. आप सच मानें, कई बार मालिक को अपनी पीठ पर संभाले हुए मैं घुटनों तक दलदल में उतर गया हूं. इस पर भी उसने कभी अपने हाथ से वह चमड़े की कमची नहीं गिरायी. उसे देखकर मैं अंदर ही अंदर रो उठा. पर मैं रो ही लिया, यह कभी नहीं सोचा कि उसे पीठ पर से फेंक दूं. इससे कौम की बदनामी होती. हमारी कौम की इसी साख पर तो रोज़ी-रोटी चलती है कि हम अपने मालिक को धोखा नहीं दे सकते. चाहे मालिकों के इशारे पर आपस में एक-दूसरे की जान ले लें!

पर सच यह है कि मेरा अपना एक नाम होने के बावजूद मालिक ने कभी मुझे उस नाम से नहीं पुकारा. भूलकर भी नहीं. कभी तो कहता है कि 'हरमना' तू घोड़ा नहीं 'हरमना' है. यह नाम मालिक ने स्वयं ही दिया था. वह भी इसलिए कि मैंने उसके लिए हर तरह का, हर काम किया. पर मालिक की याददाश्त बहुत कमज़ोर है. कुछ भी कर दो, झट भूल जाता है. इस सबके बावजूद कभी-कभी मैं पूरी तरह मौज में आ जाता हूं. वह मेरी पीठ पर सवार होकर, मुंह में पाइप लगाकर जमकर बैठ जाता है. मैं ठुमक-ठुमक कर दुलकी चलने लगता हूं. जहां कहता है वहीं उसे आनन-फानन में पहुंचा देता हूं. कभी-कभी वह थपल-थपल बोलने लगता है. ऐसी भाषा, जो मेरी दस पुश्तों की समझ में नहीं आ सकती. पर उसकी सवारी में रात दिन रहने के कारण मैं उसकी भाषा को, उसके हाव-भाव से यहां तक कि सवारी गांठने के ढंग तक से समझ लेता हूं. जब कभी वह किसी भिन्न मूड में होता है और अपनी उंगली भी मेरे पुट्ठे से छुआ देता है तो उसका स्पर्श मेरी हड्डियों में से होता हुआ पूंछ में से गुज़र जाता है. घोड़ा बना हूं, तो पूंछ भी है ही. किसी पिछली या अब की ग़लती के लिए वह अपनी उसी थपल-थपल भाषा में नाराज़गी से बोलता है तो मैं समझ जाता हूं कि वह कह रहा है कि तुम्हारे सौ बेंत लगाऊंगा और एक गिनूंगा. मेरा खून सूख जाता है. आज तक तो मारा नहीं पर मालिक किस्म का आदमी, क्या पता कब रुख बदल दे! सब कुछ भूलकर चाबुक लेकर पिल पड़े!

कभी-कभी वह हवा की बातें भी करता है. अगर मैं उन बातों को समझने और मानने वाला होता तो शायद मेरे पांव भी ज़मीन पर न पड़ते. क्योंकि मेरे अंदर स्वतः एक विशेष समझ विकसित हो गयी. इसलिए भाषा न समझते हुए भी उसका आशय समझ जाता हूं. वह अपने को शाह और मुझे शाही (सवारी) की संज्ञा देता है. जब कभी मैं उसे दलदल से निकालकर सूखी ज़मीन पर लाता हूं तो वह बिना मेरा नाम लिये ही कहता, "तू महान है. तुझमें वह ताकत है कि ज़मीन और आसमान के कुलाबे एक कर दे."

इस बात से मेरे अंदर थोड़ा अंतर आ जाता है यानी मेरा रक्त तेज़ी से बहने लगता है. मेरी कोखें पिचकी हुई न होने पर भी धौंकनी की तरह उठने-बैठने लगती हैं. कुल मिलाकर मेरे श्वास की गति बढ़ जाती है. एक तरह की तेज़ी पनप उठती है. किसी खुर्राट बाबू की कलम की तरह मैं फर-फर चलना शुरू कर देता हूं. लेकिन यह सब स्थायी नहीं होता. कुछ देर बाद फिर वैसा का वैसा! घिस-घिस, घिस-घिस! कभी-कभी मालिक गहरे मानसिक दबाव में होता है. वह यह बात मुझे बताता थोड़े ही है, मैं उसके तिकतिकाने के ढंग से समझ जाता हूं.

वह रकाब पर टिके दाहिने पैर की ऐड़ी से ऐड़ लगाकर मुझे तंग कर डालता है. वह ऐड़ मुझे अपमान से मर देती है. मैं चल ना रहा हूं या रास्ते में किसी तरह की कांट-छांट कर रहा हूं, तब तो बात दूसरी है. लेकिन अच्छे-खासे चलते-चलाते को ऐड़ने का मतलब उसके प्रति अविश्वास और अपमान! मेरी दुलकी सरपट चाल में बदल जाती है. ऐसा वह तभी करता जब वह चाहता कि मैं ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर बिना देखे-भाले दौड़ पड़ूं. मैं मन ही मन जानता रहता हूं, जल्दी काम, शैतान का!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जानने और मजबूरन काम करने में बहुत फ़र्क होता है. कई बार मैं गिरा. घुटने छिल गये. जब मैं उसके काम की वजह से चोट खाता हूं तो वह इलाज जरूर कराता है. जब वह समझता है कि दौड़ की जरूरत नहीं तो दौड़ाते-दौड़ाते एकाएक लगाम खींच देता है. सच कहता हूं कि वह दानेदार लगाम जो साधारण लगाम से कई गुना खतरनाक और ताकतवर होती है मेरी इस अनबोलती जबान को लहू-लुहान कर डालती है. उधर ज़बान से खून बहता है, इधर शरीर के अंदर का खून खौल उठता है. क्या करूं, झक मारकर रुकता हूं. मेरा दुर्भाग्य देखिये कि मैं अपनी ज़बान सहला तक नहीं पाता! बस उस जानलेवा लगाम को खुटुर-खुटुर दांतों से चबाता रहता हूं. कहां मेरे दांत और कहां वह दानेदार (कांटों वाली) लोहे की मोटी कड़ी. मेरा मन अलफ़ होने को करता है. मन क्या करता है, गुस्सा ज़ोर मारता है पर. . . कुछ नहीं बेकार! साज़ खराब होने का डर, मालिक के गिर जाने का अंदेशा . . . और फिर अच्छा खाने की चाह!

थोड़ी देर बाद ये सब भाव रफूचक्कर हो जाते हैं. न खून की गर्मी, न अलफ़ हो जाने का औसान. फिर समझ में आता है कि वह सब छद्म था. अच्छा ही हुआ कुछ नहीं किया, नहीं तो अपने ही ज़ोर में गिर पड़ता. वैसे भी जिसका खून लगातार गर्म रहना बंद हो जाता है वह फिर मुश्किल से गर्म होता है. होता है तो फटठंडा भी पड़ जाता है. हम जैसों का तो खास तौर से. इसी तरह से रहते चले जाने की आदत पड़ गयी है. पड़ी आदत बहुत बुरी होती है. इतनी बुरी कि उससे बुरा घोड़े से गधा हो जाना भी नहीं होता. लेकिन मुक्त दिनों की याद आती ही है. हालांकि आनी नहीं चाहिए. हम दोनों के बीच कोई रिश्ता नहीं बचा. फिर भी आती है. अपने पर बस आश्चर्य होता है. इतना जमाना हो गया लगाम लगे और पिछाली बांधे! यही बंधन अब घोड़ा होने का प्रमाण है. हालांकि कम से कम मैं अपने को घोड़ा मानना टाल सकता हूं क्योंकि मेरे पास मेरे मालिक का दिया एक दूसरा नाम है.

▣

जब आया था यानी लाया गया था तो मुझमें अजीव बछेरापन था. किसी बात की तमीज ही नहीं थी. हर बात पर चमकता था. कुछ हुआ नहीं कि दौड़ने लगा, दुलत्तियां झाड़ने लगा. दोनों पैरों पर अलफ़ खड़ा हो जाता. सब बेवकूफी भरी बातें. शायद परि-शिक्षित और पालतू हो जाने पर आज़ादी के दिनों में किये जाने वाले सब व्यवहार बेवकूफी भरे लगने लगते हैं. यहां तक कि मैं ठीक तरह से दुलकी चलना तक नहीं जानता था. शाबाशी देने के लिए बढ़ा हुआ हाथ भी मुझे स्वीकार्य नहीं था. अब तो मैं तत्काल धुरघुरा देता हूं. वह सब कुछ पूर्व-जन्म की तरह लगता है.

'बड़े नत्थू' से पहले 'छोटा नत्थू' मेरी टंडलवाल के लिए रखा गया था. तब मैं यही नहीं पहचानता था कि अपने को आदमी मानने वालों में भी वर्ग-दर-वर्ग होते हैं. बड़े से भी बड़ा नत्थू, बड़ा नत्थू, छोटा नत्थू और न जाने कितने नत्थू. तब दो ही बातें समझता था—नत्थू और मैं! दरअसल यही दो मोटी बातें समझ में आती थीं. वह बेचारा छोटा नत्थू एक साथ दस-दस बार मेरे पिछाली बांधने के लिए हिम्मत साधता था. पर जैसे ही नज़दीक आता था मैं उछल पड़ता था और पूरे अस्तबल में हलचल मचा देता था. वहां जो और सधे हुए घोड़े मौजूद होते थे उनकी गर्दन शर्म से झुक जाती थी. एक बार तो मैंने छोटे नत्थू को दालखाना तक झाड़ दिया था. दरअसल तब मुझे अपनी आज़ादी का वही अकेला दुश्मन नज़र आता था. वह मेरे पिछले पैरों में हाथ डालता और जैसे ही मैं बिदकता वह तत्काल मेरे पुट्ठे सहलाने लगता. मेरी आंखों में खून उतर आता. आखिर यह मेरी जान के पीछे इस तरह हाथ धोकर क्यों पड़ा है? उस समय यह बात समझ में नहीं आती थी कि बंधक बनाने वालों में जितना धैर्य, सहनशक्ति और बेहयापन होता है, उससे अधिक अधैर्य और असहिष्णुता बनने वाले में होती है.

जहां मैं ठंडा पड़ता फिर पैरों में हाथ डालने और पुट्ठे सहलाने वाली क्रिया शुरू हो जाती. मेरी कनौती खड़ी हो जाती. दरअसल उसकी नज़र कनौती पर रहती थी. कनौती खड़ी होते ही उसका हाथ जहां होता था वहीं रुक जाता था. सच पूछो तो वह पटाया करता था कि मैं आज़ादी का ख्याल छोड़ दूं. लेकिन उसकी बात मेरी समझ में नहीं आती थी. स्वभावतः मेरा रवैया उसके लिए एक चुनौती की तरह था, हारकर छोटे नत्थू को बड़े नत्थू की मदद लेनी पड़ी थी. उस समय तक मुझे बड़े वाले की और उसकी शक्ल में कोई खास अंतर नज़र नहीं आया. बल्कि इस बात पर आश्चर्य ही हुआ कि नत्थू एक से दो कैसे हो गया! वह हो सकता है तो मैं क्यों नहीं हो सकता, मैं दो हो जाऊं तो इन दोनों नत्थुओं को ठिकाने लगा दूं!

बड़ा नत्थू ज़्यादा चालाक निकला. वह केवल मेरी पीठ ही सहलाता था. झुक कर पिछाली चढ़ाने का खतरा उसने कभी नहीं लिया. पीठ सहलवाने में मुझे बहुत मज़ा आता था. पीठ सहलाते-सहलाते वह नत्थू को इशारा कर देता था कि चालू हो जाओ. लेकिन मैं इतना बेहोश नहीं होता था कि उसका हाथ अपने पैरों की तरफ बढ़ता हुआ महसूस न करूं. मैं तत्काल कूद जाता. एक-दो बार तो उस बड़े नत्थू ने बर्दाश्त किया फिर मेरे गले का रस्सा कसकर हंटर फटकारने लगा. लेकिन बावजूद अंदर उमड़ते भय के मैं अपनी आज़ादी को इतनी आसानी से छोड़ देने के लिए तैयार नहीं था. वे ज़्यादा ज़ोर ज़बरदस्ती करते. मैं रस्सा तुड़ाकर सीधा खड़ा होने की तैयारी करने लगता. इससे वे डर तो जाते पर हिम्मत न हारते. एक दो बार जब ऐसा किया तो उनके लिए मुझे सीधा करना कठिन हो गया. खैर, किसी तरह से सीधा हुआ. मेरा मन इस बात से खुश हो गया कि मैंने इन नत्थुओं से अच्छी लड़ाई लड़ी.

बाद में पता चला कि 'बड़ा नत्थू' हम जैसों की आज़ादी को पालतूपन में बदलने के तरीकों का पक्का हकीम है. छोटे नत्थू के ऊपर उसकी सेवा का नियोजन इसीलिए किया गया है लेकिन वह चाहे जितना भी बड़ा हकीम रहा हो पर मेरे ज़िद्दी स्वभाव के कारण काफी क्षुब्ध था. उसके अहं को काफी चोट पहुंच रही थी. इस बात को वह ज़ोर-ज़ोर से कहता था कि उसने बड़े-बड़े शातिर घोड़ों को साध दिया पर इतना बदमाश कभी देखने में नहीं आया. मैं उसकी इन सब बातों को उतना तो नहीं समझता पर इतना ज़रूर समझ जाता था कि वह नाराज़ है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी ने मेरे मुंह पर वह कांटों वाली यानी दानेदार लगाम लगाई थी और आंखों पर कनटोपे की तरह का वह मुखौटा चढ़ाया था, जिससे मैं सीधा ही देखूं और इधर-उधर का बिलकुल नज़र न आये. गले में ज़ेरबंद भी उसी ने डाला. ज़ेरबंद की वजह से अलफ़ होने में परेशानी होने लगी. हम लोग अपने को आज़ाद तभी तक महसूस करते हैं जब तक हमारे अंदर यह अहसास बना रहे कि हम दोनों पैरों पर खड़े होकर अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कर सकते हैं. उस लगाम और ज़ेरबंद के बावजूद मैंने अलफ हो जाने की अपनी प्रवृत्ति को नहीं छोड़ा. हालांकि खतरे बढ़ गये.

मेरे इस व्यवहार से बड़ा नत्थू और भी नाराज़ हो गया. उसने अपना चाबुक फटकारते हुए धमकाया, 'अबे, अपनी नस्ल का और पंच-कल्याण होने का गुमान करता है! मां-बाप ने तो पैरों में नाले ठुकवाये और टांगें रगड़ते गुज़ार दीं. तू बादशाहत करने के लिए पैदा हुआ है. न तेरी एक-एक नस तोड़कर तुझे नामर्द बना डाला तो अपना नाम बदल डालूंगा. कसाइयों से कटवाकर तेरी एक-एक बोटी कुत्तों से नुचवाऊंगा.'

उसकी इस तरह की बातें मन को कचोटती थीं. अपमान से एक-एक रोआं फड़क उठता था. पर एक ऐसा प्राणी जिस पर चौपाये की योनी थोपी गयी हो, इससे अधिक कर ही क्या सकता है कि वह अपने चौपायेपन से विद्रोह करके दो पैरों पर खड़ा हो जाये और अपने आप को दो पाया समझने वालों को चुनौती दे. वही मैं करता था. शायद मेरा यह सब कुछ करना अपने लिए खाई खोदने की तरह था. पर था, सो था,

▣

बड़े और छोटे नत्थू ने मिलकर जब पहली बार पिछाली लगाई थी तो मैंने उसे तोड़ डाला था. तभी से इस भावना ने मेरे मन में घर कर लिया था कि मैं इस तरह के बंधनों को आनन-फानन में तोड़ सकता हूं. गुलाम बनाने के प्रयत्नों को निष्फल कर सकता हूं. एक दिन आयेगा जब मैं इन बंधनों को तोड़कर स्वतंत्र हो जाऊंगा. ये लोग देखते रह जायेंगे. उस समय तक मैंने वहां पर उपलब्ध सुविधाओं के बारे में सोचना शुरू नहीं किया था. सच कहूं तो मैं तब तक उनके प्रति आकर्षित भी नहीं था. मेरा आत्म-विश्वास मुझे कहने लगा था कि मैं अपने लिये इससे अधिक हरे चरागाह खोज सकता हूं. बस, आज़ाद होने भर की देर थी. पर इस आत्म-विश्वास के थोथेपन का मुझे तब पता चला जब एक बार मैं बड़े नत्थू के हाथ से छूटकर भाग निकला. वह मुझे टहलाने निकला था. तब तक मैं रस्सी से बंधकर टहलाये जाने की नियति को स्वीकार कर चुका था. वास्तव में टहलाने ले जाना साधने का ही एक आरंभिक हिस्सा था. इस बात का अहसास मुझे बाद में हुआ.

उसके हाथ से छूटकर भागा तो मेरा ख्याल था कि मेरी सीमा संपूर्ण धरती है. मैं कहीं भी जाकर लौट सकता हूं और मुक्त भाव से हिनहिना सकता हूं. लेकिन बात बिल्कुल वैसी ही नहीं थी जैसी मैं सोचता था. जिस तरह का बढ़िया दाना और मुलायम दूब खाने का मैं आदी हो गया था उससे किस कदर खराब घास मुझे खाने को मिली थी, मैं ही जानता हूं. जो बड़े-बड़े और हरे-हरे चरागाह थे वहां पहले से ही और घोड़े मालिकाना अंदाज़ में चर रहे थे. मैं उन चरागाहों के पास से गुज़रता भी था, घोड़े तो दौड़ते सो दौड़ते ही थे, उनके टंडैलिये भी दौड़ पड़ते थे. इधर-उधर नालियों के किनारे तथा गंदी जगहों पर जो घास मिल जाती थी, उसी के घाट उतरना पड़ता था. मेरी ज़बान बावजूद दानेदार लगाम से लड़ते रहने के, इतनी कोमल पड़ गयी थी कि उस मोटी और धारदार घास को खाने में जान पर बन आती थी. उस घास ने मेरी ज़बान को उस दानेदार कटीली लगाम से ज़्यादा ज़ख्मी किया. मैं उस खाने से ऊब गया. अच्छी घास और दाने की हुड़क से अधमरा-सा होता गया. मैं फिर वापस उसी शहर में आ गया जहां मेरा मालिक (यानी बड़े से भी बड़ा नत्थू) बड़ा नत्थू और छोटा नत्थू रहते थे. मेरी तलाश काफ़ी तेज़ी से तब तक भी जारी थी. दरअसल उन्होंने मेरे ऊपर अभी तक खर्च ही किया था. वे मुझे एक अच्छा फरमाबरदार, स्वामी-भक्त और आला-सवारी बना देखना चाहते थे. इसीलिए उन्होंने बड़े नत्थू जैसे उस्ताद की सेवाएं नियोजित की थीं. उनका ख्याल था कि एक बार अच्छी तरह साधा गया घोड़ा ज़िंदगी भर के लिए नियामत सिद्ध होगा.

▣

मैं पकड़ लिया गया. मैंने बहुत सोचा कि मैं इस पकड़-धकड़ से प्रसन्न हूं या दुखी? पर समझ में नहीं आया. खैर, फिर वापस उसी अस्तबल में पहुंचा दिया गया. सब नत्थू एक कतार में खड़े मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे. मेरे भाग जाने से हतप्रभ और दुखी भी थे. उस दिन बाद में उस 'बड़े नत्थू' ने मुझे चाबुक से खूब पीटा. उसके पीटने के ढंग से लगा कि सबसे बड़े नत्थू ने भी इन दोनों नत्थुओं को इसी तरह मारा होगा. नहीं तो इतना न पीटता. इतना तो तब भी नहीं पीटा जब मैंने दुलत्तियां झाड़कर इनके दाल-खाने तोड़ डाले थे. पिटते हुए मैं अपने को कोसता जा रहा था, 'ले बच्चा, खा हरी-हरी दूब और भीगा हुआ दाना! मोटी घास नहीं खायेगा, मार तो खायेगा. . . !'

खाना-पीना फिर चकाचक चलने लगा. एक दिन 'बड़े-से-बड़ा नत्थू' भी आकर उन दोनों नत्थुओं को डांट गया था कि खबरदार, अब घोड़े (हरमना) को कोई तकलीफ़ न हो. अगर अब भागा तो ऐसी सज़ा दूंगा कि याद रखोगे. दोनों नत्थू मेरी तरफ़ इस तरह देख रहे थे कि जैसे भांप रहे हों, मैंने सुना या नहीं. पर मेरे तो मुंह पर दाने का तोबरा चढ़ा था. मैं यकायक खाने में लगा था. तोबरा चढ़ा होने से उन्हें मेरी शक्ल से भी कुछ खास पता नहीं चल रहा था. पर मेरे कान उसी की बात पर थे.

उसके बाद बड़ा नत्थू बिरजिस और छोटा कोट पहने, हाथ में चाबुक लिए मेरे आस-पास बना रहने लगा. इस ड्रेस में वह मुझे बहुरूपिया ज़्यादा लगता था. क्योंकि वैसे वह फटा हुआ पायजामा पहनता था. जब तक यह वर्दी नहीं बनी थी उसी फटे पायजामे में ही आया करता था. जब वह मेरे सामने आता तो मेरी नज़र उसके चाबुक पर तब तक टिकी रहती थी जब तक वह या तो उसे कहीं रख नहीं देता था या वहां से हट नहीं जाता था. क्योंकि जब आदमी के हाथ में चाबुक हो तो उसे मरखना सांड ही मानना चाहिए. वैसे भी मुझे अपने अंदर आज़ादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए संघर्ष करने की शक्ति पहले से कम महसूस होने लगी थी. जब वह मुझे निकालता था, मैं हील-हुज्जत तो करता था पर मेरी उस हील-हुज्जत का असर उस पर कम पड़ने लगा था. जब कभी अलफ़ भी होता तो उसे तो क्या, छोटे नत्थू तक को कोई खास परेशानी नहीं होती थी. बल्कि भौंडी-सी गाली देकर मेरे पेट में ढोके जड़ना शुरू कर देता था. पेट पर पड़ने वाली चोट कभी-कभी काफ़ी तोड़ देती है. बाद में तो ये पेट पर पड़ने वाले ढोके ही मालिक की ऐड़ें में बदल गये थे. तब मैं उन ढोकों की चोट के कारण मजबूर रहता था, अब इन ऐड़ों के कारण मजबूर रहता हूं. जब भी मालिक कोई ऐसा-वैसा काम कराना चाहता है या चाहता है कि तेज़ दौड़ूं तो रकाब में रखे उसके जूते की ऐड़ी, ऐड़ के नाम पर मेरे पेट में घुस जाती है. मुझे दौड़ते चले जाना पड़ता है; बिना कुंए-खंदक का ख्याल किये. 'सबसे बड़े नत्थू' को छोटी-छोटी पहाड़ी पगडंडियों पर तक तेज़ी के साथ चढ़ना पड़ता है. उस समय मेरी क्या हालत होती है मैं ही जानता हूं. स्वयं चलना और पीठ पर बैठे नत्थुओं में सबसे बड़े नत्थू को संभालना. राम भजो! जब उसका काम पूरा हो जाता है तो पीठ थपथपाकर पूरा शाबाश भी नहीं कहता. बस 'शाबा' कहकर धीरे से अंतर्ध्यान हो जाता है. अब गुस्सा नहीं आता, पहले आता था.

मसाले जो खिलाये जाते हैं. जिससे उसके चाहने पर मेरा ठंडा खून गर्मा जाये. इन तीनों के अलावा मुझे कोई छू भर दे, बस आगबबूला! इस बात को ये लोग बड़ी इज्ज़त की नज़र से देखते हैं और मेरी नस्ल की दाद देने लगते हैं. वैसे यह मेरी असहिष्णुता है. दूसरों के प्रति यही असहिष्णुता इन लोगों को पसंद आती है. जब कभी ठंडे दिमाग़ से सोचता हूं तो इन लोगों पर और अपने पर भी हंसी आने लगती है.

▣

अपनी इस दुर्दशा के लिए मैं बड़े नत्थू को दोषी मानता हूं. उसे मैं कभी माफ़ नहीं कर सकता. हालांकि मेरे माफ़ करने या न करने से उस पर क्या असर पड़ता है. पर कभी-कभी ग्लानि होती है कि इस दशा को पहुंच गया कि अपनी मर्ज़ी से आ-जा भी नहीं सकता. आने-जाने की बात तो दूर रही, नाक की सीध के अलावा इधर-उधर देख तक नहीं सकता. ऊपर से लगाम! कभी इधर-उधर मुड़ना भी चाहूं तो वह सबसे बड़ा नत्थू तत्काल लगाम खींचता है. कभी वक्त था जब ये सब नत्थू मुझे छूते हुए डरते थे. बड़े नत्थू ने ही मुझे अख्ता किया. कमबख्त को मेरे नर बने रहने तक पर एतराज़ था. उसने सबको यही समझाया कि अगर ये लोग नर रहते हैं तो इनकी ताकत इधर-उधर ज़ाया हो जाती है. अख्ता अंत तक सवारी के काम आता है. पहले अख्ता किया, अब मसाले खिलाता है. शरीर में आग नहीं भरेगी तो क्या होगा? अख्ता कराकर इसने मुझे सवारी में निकाला. सोचता हूं तो दिल दहल जाता है. अपनी आज़ादी के दिनों में जोत लगे अपने भाई-बिरादरों को बग्घियां खींचते देखकर मुझे हंसी आती थी. काहे नहीं ये इस गाड़ी को ले जाकर खड्ड में डाल देते या दुलत्तियां झाड़कर इन गाड़ियों का काम तमाम कर देते? क्यों ये ज़िंदगी भर दो बमों के बीच ही चलते रहना चाहते हैं? उन्हीं को देखकर मैंने यह निर्णय लिया था कि मैं कभी अपने लिये घोड़ों की नियति स्वीकार नहीं करूंगा. मैं इन सबसे ऊ[…] इनके जैसी ज़िंदगी बसर करने के लिए नहीं पैदा हुआ. […] इस बड़े नत्थू ने मेरी एक नहीं चलने दी. एक बार जब मैं […] गया था और इसके कब्ज़े में नहीं आ रहा था तो इसने अपने […] हुए लोहे से मुझे दाग़ दिया था. तब पहली बार अहसास हुआ […] आज़ादी की तकलीफ़ इतनी जानलेवा है.

उस दाग़ का घाव जो अब ऊपर से अंदर चला गया […] कभी-कभी टीसता है. जब टीसता है तो गुलामी और आ[ज़ादी] की दोनों तस्वीरें सामने उभरती हैं. जब तक सामने रहती […] तो मैं आज़ादी को ललक के साथ देखा करता हूं. फिर आज़ादी […] तस्वीर धीरे-धीरे विलीन होनी शुरु होती है. दोनों तरफ़ […] आंखें बंद होने के बावजूद गर्दन घुमा-घुमाकर मैं उसकी […] तब तक देखता रहता हूं जब तक दीख सकती हैं या पूरी […] लोप नहीं हो जाती. उसके हटते ही गुलामी धर दबोचती […] तीनों नत्थू अपने-अपने हथियारों के साथ एक कतार में मेरी […] के सामने आकर डट जाते हैं. बड़ा नत्थू सबसे बड़े नत्थू से […] ज़्यादा बड़ा और भयावह लगने लगता है. छोटा और भी […] हो जाता है.

▣

बड़े नत्थू ने मुझे जिस तरह टुकड़े-टुकड़े करके तोड़ा […] उसे मैं ही जानता हूं. मैं उस सबको भूल जाना चाहता हूं. […] बड़े नत्थू की परछाईं भी दिख जाती है तो वह सब कुछ […] आने लगता है जो उस मरदूद ने मेरे साथ किया है. वह […] चक्कर के लिए मुझे निकाला करता था. एक बहुत बड़े घे[रे में] दुलकी चलाता था और चलाता चला जाता था. यदि खड़ा […] जाता था तो वह लंबा रस्सा जो मेरे मुखौरे के नीचे लगे हु[क से] बंधा रहता था, उसको फटकारने लगता था. छोटा नत्थू […] पीछे-पीछे दौड़ा करता था. रुकने पर वह मुझे ठेलता था. […] दौड़ता या हठ कर जाता तो 'बड़ा' मुंह भरकर गाली देता […] उस लंबे रस्से के सहारे मुझे साधने की कोशिश करता. […] भी जब उसकी चाही चाल पर नहीं आता तो वह पगला […] जाता और छोटे नत्थू से ढोके लगाने को कहता. मेरी चाल […] बिगड़ जाती थी. क्योंकि बोलने की सामर्थ्य ईश्वर ने रहने […] दी थी. हालांकि पहले बोलते थे, हवा तक में उड़ते थे. अब ये […] सुनी-सुनायी बातें हैं. यही बचता था कि चाल को और बि[गाड़] लो. जब बात नहीं बनती थी तो वह लोहे की पत्तियों […] गुर्ज़ फेंक कर मारता था. ज़्यादातर वह पेट पर ही लगता […] इतना नाज़ुक स्थल और गुर्ज़ की मार. बिलबिला उठता […] और कुछ देर ऐंडी-बेंडी चाल चलने के बाद फिर उसी चाल […] आ जाता था जैसी वह चाहता था.

जिस दिन मैं बड़े नत्थू की बात मानकर काम करता […] तो वह बहुत खुश होता. घी पड़ी रोटी, भीगा हुआ दाना […] मुलायम-मुलायम तथा हरी-हरी दूब भर पेट खिलाता. […] कराता. स्प्रिट की मालिश होती. हाथ-पैर चटकवाता. पूरी […] ताज़ा कर देता था. उस दिन मैं भी बहुत अच्छा अनुभव करता […] उस दिन मुझे अपनी पिछाली और मुखौरे से कुछ ज़्यादा अ[…] नहीं होती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा स्वभाव बहुत धीरे-धीरे स्थिर हुआ. आज़ादी के लिए लड़ने के कारण पैदा होने वाली तकलीफ़ें जब सामने आने लगीं तो आज़ादी के बारे में मेरे विचार बदलते गये. उन तकलीफ़ों के बहुत बढ़ जाने पर छोटे नत्थू के द्वारा कभी-कभी सहारा मिलता था. यह बात मेरे मन में उसके प्रति सद्भावना भर रही थी. मुझे लगा था उन दोनों नत्थुओं से छोटा नत्थू थोड़ा भिन्न है. मैं आश्वस्त होता जा रहा था कि आराम-देह ज़िंदगी आज़ादी की लड़ाई से ज़्यादा गुलामी की स्वीकृति के नज़दीक होती है. हालांकि इस बात के अहसास के साथ ही साथ मेरे दिमाग़ में बग्घों के बीच चलते अनेक घोड़े आ जाते थे. उनकी पीठें घायल थीं. घुटने बैंजों के कारण फूले हुए थे. उसके बावजूद वे लंगड़ा-लंगड़ा कर चलते चले जाते थे. उनको यात्रा के बाद ही खड़े होने के लिए थान और

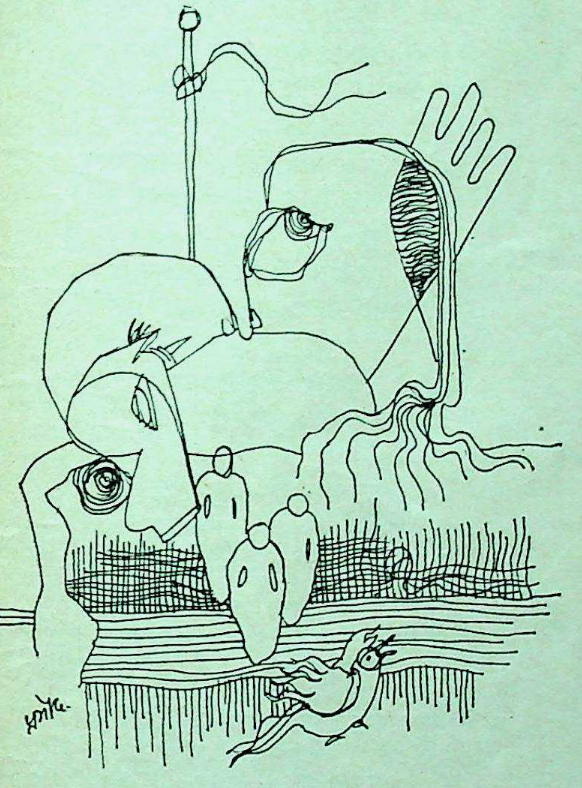

खाने के लिए घास मिल पाती थी. उनके पेट इतने कमज़ोर पड़ गये थे कि ज़रा-सी भी चोट उन्हें 'टें' कर सकती थी.

छोटा नत्थू बड़े नत्थू से बहुत छोटा था. कभी-कभी वह मुझे समझाया करता था, "अरे हरमना, क्यों जी छोटा करता है, सबको अपनी-अपनी जून का भोग भोगना पड़ता है. तू भी भोग रहा है, हम भी भोग रहे हैं."

मुझे अभी भी याद है कि जब मैं आया था तो मेरी ही दुलत्ती से उस बचारे का दाल-खाना झड़ गया था. उन दिनों वह मुझसे दूर-दूर रहने की कोशिश करता था. उसने मुझे अपनी सुपुर्दगी तक में लेने से आना-कानी की थी. ऐसे छूता था जैसे मैं जरायम-पेशा होऊं. लेकिन बाद में जब उसके छूने पर मैंने सिवाय अपनी खाल को झुर-झुरा देने के और कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तो उसकी हिम्मत खुलती गयी और वह मेरे नज़दीक आता गया. यहां तक कि लंबी और थकान भरी यात्रा के बाद जब मुझे मालिक के हुक्म से घी पड़ी रोटी दी जाती तो वह उनमें से दो-चार पार कर देता था. मैं देखकर भी अनदेखा कर देता था. उसे नशे का भी शौक था. वह मालिश के लिए आयी स्प्रिट में से थोड़ी चुराकर पी भी जाता था. स्प्रिट की चोरी मेरे लिए परेशानी पैदा कर देती थी. क्योंकि सवारी के दौरान जो चोटें और खरोंचें आतीं या हड्डियों पर ज़ोर पड़ता, स्प्रिट की मालिश उसमें काफी आराम पहुंचाती थी. छोटा नत्थू मालिश करता-करता कभी-कभी आत्म-स्वीकृति की मुद्रा में आ जाता और कहता, "हरमना, तू समझता होगा कि नत्थू बहुत लालची और गंदा आदमी है. मैं खुद मानता हूं. पर तू मुझे अपने जैसा ही समझ! बस फरक इतना ही है, मैं तेरी सेवा करता हूं और तू मालिक की. मालिक का तेरे से सीधा काम पड़ता है इसलिए वह तेरी मालिश कराता है. मेरे से नहीं पड़ता तो मुझे. . . . तू देख ही रहा है! पर मेरी नसें तो मर चुकी हैं, तेरी अभी थोड़ी-थोड़ी फड़कती हैं. वैसे हम-तुम दोनों भाई-भाई. . .!" वह बहकी-बहकी बातें करता और हंसता. कभी मेरे गले में हाथ डालकर लटक जाता.

◘

मैं बोलता कुछ नहीं. बोल भी कैसे सकता था. पर एक बात अवश्य लगती है कि जब वह स्वयं कह रहा है तू अपने जैसा ही समझ तो वह मेरे जैसा ही है! कुछ देर के बाद छोटा नत्थू घोड़ों की तरह ही अनबोलता लगने लगता था. मैं धीरे-धीरे छोटे नत्थू का गहरा लिहाज़ करने लगा था. वह मेरे अयालों में उंगली डालकर घंटों सहलाया करता था. अव्वल तो गुलामी ने इस लायक नहीं छोड़ा था लेकिन फिर भी कभी जब मैं थोड़ा बहुत भी उखड़ता था तो छोटा नत्थू फौरन सामने आ जाता और मैं ठंडा पड़ जाता. उसकी शक्ल मुझे अपने से भी ज़्यादा दयनीय और बिखरी हुई लगती थी. कई बार तो उसके चेहरे की जगह मुझे अपना चेहरा नज़र आने लगता था.

मैं उसे बहुत समझाना चाहता था कि नत्थू तू तो इंसान है. मेरी छोड़, मैं तो घोड़े की जून भोग ही रहा हूं. सिवाय चलते रहने के कुछ नहीं कर सकता. पर तुझे तो आज़ादी के सवाल को समझकर उसके लिए लड़ना चाहिए! पर यह बात मैं उसे समझाता तो कैसे समझाता!

दरअसल जिस स्थिति में छोटा नत्थू था उसे ही अपनी आज़ादी मानकर खुश था. मेरी यह धारणा इसलिए और भी पक्की होती जा रही थी क्योंकि वह बड़े नत्थू तक का हंटर मुझसे ज़्यादा सहूलियत के साथ बर्दाश्त कर लेता था. आंखों में आंसू भरे रहने पर भी दांत निपोरता रहता था. बड़े से बड़ा या बड़ा, दोनों नत्थुओं में से कोई यदि चाबुक छुआ भी देता तो मैं कम से कम आगे-पीछे होकर ही अपनी नाराज़गी तो व्यक्त कर ही देता था. हालांकि अब अलफ़ होना करीब-करीब बंद हो चुका था. कभी-कभी वलवला उठता था कि दोनों हाथ उठाकर एक बार पैरों पर खड़ा हो जाऊं. मात्र यह अहसास ही क्षण भर के लिए आज़ादी के उस ख्याल को मेरे अंदर पुनर्जीवित कर देता था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सब कमियों के बावजूद मैं सवारी के लायक एक आदर्श जानवर में परिवर्तित हो चुका था. मुझे पता तक नहीं चला था कि अपनी मर्ज़ी के खिलाफ़ मैं कैसे इस स्थिति को पहुंचा. साज़ से लकदक होकर चलना, रास्ते चलते लोगों का मुड़-मुड़कर, आंखों में प्रशंसा भरकर और मेरी चतुरंगी चाल देखना मुझे किसी कदर अच्छा लगने लगा था. बड़ा नत्थू बड़े से बड़े नत्थू की सवारी के लिए, मुझे फिट बनाये रखने के लिए रोज़ मेरी पीठ पर चढ़कर दुलकी चलाता था, सरपट दौड़ाता था और जब मैं यह रियाज़ उसकी संतुष्टी के हिसाब से पूरा कर लेता था तो थप-थपाता था और छोटे नत्थू को कहता था, "देख बे, हरमना की मालिश जी-जान से किया कर. हरमना जैसा जानवर होना मुश्किल है. इसकी खातिर करेगा तो फल खायेगा. अनबोलते की आत्मा को कष्ट देने से बड़ा पाप दूसरा नहीं होता."

वह चुपचाप सुन लेता और मालिश करने पर पिल पड़ता. बिना बोले करता रहता. मैं मुड़-मुड़कर उसे देखता रहता. वह बिल्कुल न बोलता तो मैं हिनहिनाता. वह थपकता और कहता, "चुप रे, मैंने तेरी सेवा में कौन-सी कमी की? तूने उसे क्या कहा?" मैं उससे कह नहीं पाता कि भैया मैं किसी से क्या कह सकता हूं.

छोटे नत्थू का मुंह एक-दो दिन फूला रहता, फिर वह पहले जैसा ही हो जाता.

▣

मुझे याद है कि जब पहली बार मुझे बड़े से बड़े नत्थू यानी मालिक के सामने पेश किया गया था तो मेरी जो जांच-सवांर हुई थी वह दुलहन की भी नहीं होती होगी. बाल कटवाये गये थे. नयी नालें ठुकी थीं. साज़ नया पहनाया गया था. अगले घुटनों पर चमड़े के बाज़ू-बंद बांधे गये थे. रेशम का रंगीन ज़ेरबंद बंधा था. (ज़ेरबंद बंधने पर एक बार को खुंदक आयी थी) माथे पर सफेद चमचमाती कलगी लगायी गयी थी. सबसे मज़ेदार बात जो मुझे लगी थी—बड़े नत्थू ने तो वर्दी पहनी थी सो पहनी ही थी, छोटा नत्थू भी वर्दी पहनकर दूसरी तरफ से मेरी रास पकड़े खड़ा था. उस से खड़ा नहीं हुआ जा रहा था. वह बार-बार टांग बदल रहा था जैसे मैं बदला करता हूं.

मालिक ने भी कम तैयारी नहीं की थी. मोटे-मोटे जूतों पर घुटनों तक चमड़े के गार्ड बांधे हुए था. हाथ में हल्की-सी खूबसूरत छड़ी थी. उस छड़ी ने मुझे थोड़ी देर तक चौंकाये रखा था. जब बड़े से बड़ा यानी सबसे बड़ा नत्थू सवार होने लगा तो बड़े नत्थू ने ही मुझे इशारा कर दिया था कि मैं थोड़ी उछल-कूद मचाऊं, हलचल करूं. उस वक्त तक लगाम और रास दोनों उसी के हाथ में थीं. उसके इशारे को समझकर मुझे वैसा ही करना पड़ा. जब मैंने हलचल की तो वही मुझे घुड़कने भी लगा, "अबे, क्या करता है? अपने भाग सराह आज हुजूर तेरी सवारी कर रहे हैं. तेरा जीवन सफल हो गया." फिर उस सबसे बड़े नत्थू के सामने मेरी तारीफ करने लगा था, "हुजूर, ऐसा जानवर आस-पास नहीं मिलेगा. असील ऐसा कि पूछिए नहीं, वैसे आग का गोला. मैं इसके कान में फूंके देता हूं कि आज से सरकार ही तेरे मालिक हैं. कट जाना पर मालिक को धोखा न देना." उसने यह बात इस तरह कही कि मेरी पीठ पर सवार 'सबसे बड़ा नत्थू' सुन ले.

ग़ज़ल

सब लोग पूछते हैं वे वादे कहां गये,
आकाश नापते-से इरादे कहां गये?

जिनकी हरेक चाल पर मुद्दत से नाज़ था,
घोड़े कहां गये, वे पियादे कहां गये?

कहते थे फेंक देंगे इन्हें भी उतारकर,
बूढ़ी सियासतों के लबादे कहां गये?

ले-दे-के एक आग थी जिस पर यकीन था,
वे रोशनी पसंद तगादे कहां गये?

जो लेके इंकलाब चले थे हवा के साथ,
कोई करीब आके बता दे, कहां गये?

▣ **उमाशंकर तिवारी**

जब से वह सवार हुआ आज तक मेरी पीठ भरी हु[ई] बड़े से बड़ा नत्थू सवारी गांठता है. जो भी सवार होता है, [ ] नत्थू ही है. मैं निरंतर दौड़े जा रहा हूं. छोटा नत्थू मेरी पूंछ [ ] पीछे-पीछे दौड़ता रहता है. जब सबसे बड़ा नत्थू ऐड़ लगा दे[ता] तो छोटा नत्थू कहीं बहुत पीछे छूट जाता है. तब मुझे तक[लीफ़] होती है. मालिक की खुशी के सामने मेरी या उस छोटे न[त्थू की] तकलीफ़ का मतलब ही क्या! बड़ा नत्थू कभी-कभी नज़र आ[ता है] मेरे किसी दूसरे भाई-बंधु को साधता हुआ. उस समय मेरा म[न] बार अलफ़ करने को हो आता है. पर लगता है मेरी टांगें [ ] रूप से मेरा वज़न संभालने के काबिल नहीं रहीं. इसलिए मैं [ ] कुछ किये चलता चला जाता हूं. छोटा नत्थू मेरे पीछे [ ] रहता है. और वह बड़ा नत्थू सड़क पर कभी भी नज़र आ [ ] है. . . . !

● आई. आई. टी, रजिस्ट्रार, कानपुर.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथाएं

सिफ़ारिश

■ सुरेंद्र मंथन

"सुना है यार, आजकल तुम्हारी खूब चलती है. हमारा भी एक काम करा दो न."

"देख लो. बार-बार जाना अच्छा नहीं लगता. अभी अपना तबादला रद्द करवा कर आ रहा हूं. अब दुबारा जाना कुछ ठीक नहीं लगेगा.

"छोड़ यार! ये लोग तो उल्टा खुश होते हैं. एम.ए. पास आदमी इनके इर्द-गिर्द चक्कर लगाये. इन्हें और क्या चाहिए इसके सिवा?"

"मक्खन न लगा यार! लेकिन एक बात है. आदमी जानदार है. हेर-फेर कुछ भी करके काम करवा देता है. मैं तो हमेशा के लिए बिक गया."

"तुम्हारा तबादला हुआ कैसे था?"

"मेरी जगह एक अध्यापिका आ गयी थी."

"किसके ज़ोर पर. . . ?"

"सिफारिश तो यार उसकी भी इसी ने की थी. . . !" □

स्पानी लोक कथा पर आधारित

दो प्रतिशत कर

■ सुरेश धींगड़ा

पूरी रात आंखों में गुज़ारने के बाद किसान ने सोचा—कृषि-यंत्र खरीदने के लिए फसल पर दो प्रतिशत ब्याज देने की शर्त मंजूर होनी ही चाहिए.

इसके बाद वह नगर-समिति के सदस्य के पास भागा-भागा गया और नमस्कार के बाद बोला, "कृषि-यंत्र खरीदने के लिए फसल पर दो प्रतिशत ब्याज की शर्त मंजूर होनी ही चाहिए."

नगर-समिति के प्रतिनिधि तुरंत प्रांतीय-समिति के सदस्य के पास गये और उनसे कहा, "जाहिल किसान अपनी फसल के दो प्रतिशत के एवज में कृषि-यंत्र खरीदना चाहते हैं."

प्रांतीय-समिति के सदस्य ने अपने प्रतिनिधित्व को महत्वपूर्ण समझते हुए राजधानी के लिए तुरंत हवाई जहाज में सीट आरक्षित करवायी. वहां पहुंच कर उन्होंने डिप्टी डायरेक्टर जनरल से मुलाकात की और कहा, "नगर-समिति के सदस्य ने मुझे बताया है कि दो प्रतिशत किसान अपनी फसल के एवज में कृषि-यंत्र खरीदना चाहते हैं."

"मैं डायरेक्टर जनरल से बात करता हूं."

कुछ क्षणों में ही उन्होंने डायरेक्टर जनरल से बात करते हुए कहा, "प्रांतीय प्रतिनिधि ने मुझे सूचना दी है कि किसानों में असंतोष फैल रहा है. उनका कहना है कि अनाज ढोने के लिए जो कृषि-यंत्र वे इस्तेमाल करते हैं, उनका दो प्रतिशत बिल्कुल बेकार है."

"हम इसे तुरंत देखेंगे" डायरेक्टर जनरल ने कहा और टेलीफोन पर मंत्री से बात की, "साहब, किसान अनाज ढोने के लिए कृषि-यंत्रों की सुविधा चाहते हैं."

"हो जायेगा." मंत्री ने जवाब दिया.

अगले दिन एक महत्वपूर्ण सरकारी सूचना प्रकाशित हुई—कृषि-यंत्रों का इस्तेमाल करने वाले किसानों की त्वचा पर जो चकत्ते हो गये हैं, उनसे उन्हें बचाने के लिए और उनका इलाज करने के लिए देश भर में एक सौ दो औषधालय खोल दिये गये हैं!" □

इज्ज़त

■ सत्य शुचि

"कुछ प्रबंध हुआ?" पत्नी ने पूछा था.

"नहीं, सेठ बाहर गया है, परसों-तरसों में आयेगा." उसने डूबा-सा जवाब दिया.

"लेकिन राशन तो कल तक भी मुश्किल. . . और घर में मेहमान भी आये हुए हैं." पत्नी कुनमुनायी.

"ऐसी की तैसी मेहमानों की, स्साले मुखमरे, हफ्ते भर से जमे बैठे हैं . . . क्या पता खाने को भी है या नहीं इनके घर पर!" वह ज़रा ऊंची आवाज़ में बोला था.

"क्या कहते हो, कोई सुनेगा. साथ वाले कमरे में ही तो. . . "

"अरे, सुन लेगा तो क्या करेगा. मैंने ठेका लिया है उम्र भर खिलाने का. शर्मदार होते तो इत्ती देर ठहरते ही नहीं. . ." और वह और भी तेज़ स्वर में अपनी भड़ास निकाल कर बाहर निकल आया.

रात को जब घर लौटा तो पत्नी ने बताया कि मेहमान जा चुके हैं, उसके बहुत इसरार पर भी रुके नहीं. बोलते थे. . . ज़रूरी काम है, आपसे नहीं मिल पाने के लिए माफी भी मांगी थी.

"मुझे पता था कि चले जायेंगे."

"शायद दोपहर की बातें उन्होंने भी सुनी होंगी."

"ज़रूर सुनी होंगी. मुझे मालूम था कि आंटी बाहर दालान में ही खड़ी थीं."

"लेकिन इससे तो बेइज़्ज़ती होगी न."

"काहे की बेइज़्ज़ती ? किसी से कहेंगे तो वह भी सोचेगा कि बिना वजह हफ्ते भर जमे रहने की क्या तुक थी? फिर हो भी तो क्या फर्क पड़ता है. बाज़ार में बेइज़्ज़त होने से बेहतर घर में हो लेना. . तुम खाना लाओ!" उसने पत्नी से कहा.□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक थी शकुन'दी

▣ सच्चिदानंद धूमके

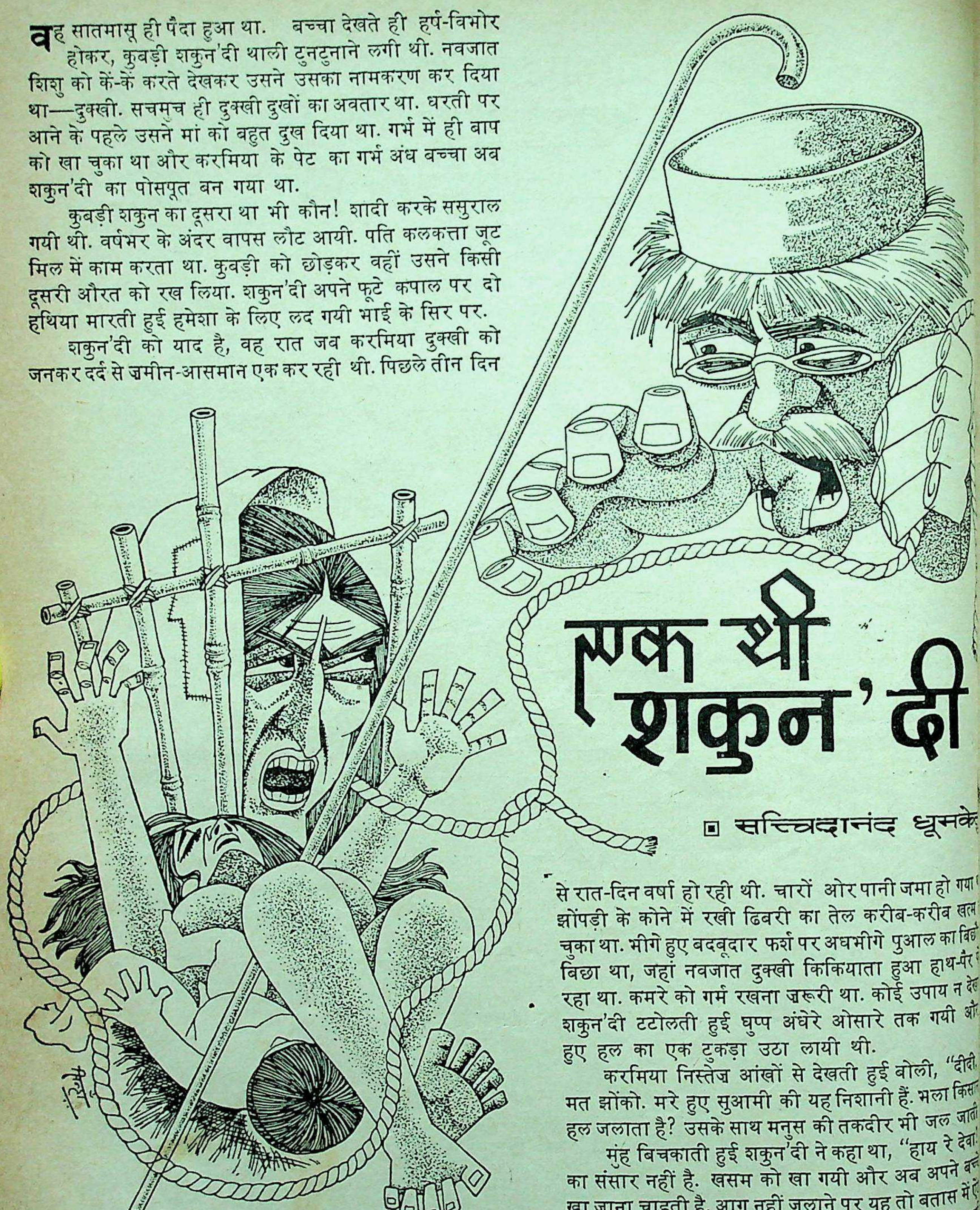

वह सातमासू ही पैदा हुआ था. बच्चा देखते ही हर्ष-विभोर होकर, कुबड़ी शकुन'दी थाली टुनटुनाने लगी थी. नवजात शिशु को कें-कें करते देखकर उसने उसका नामकरण कर दिया था—दुक्खी. सचमुच ही दुक्खी दुखों का अवतार था. धरती पर आने के पहले उसने मां को बहुत दुख दिया था. गर्भ में ही बाप को खा चुका था और करमिया के पेट का गर्भ अंध बच्चा अब शकुन'दी का पोसपूत बन गया था.

कुबड़ी शकुन का दूसरा था भी कौन! शादी करके ससुराल गयी थी. वर्षभर के अंदर वापस लौट आयी. पति कलकत्ता जूट मिल में काम करता था. कुबड़ी को छोड़कर वहीं उसने किसी दूसरी औरत को रख लिया. शकुन'दी अपने फूटे कपाल पर दो हथिया मारती हुई हमेशा के लिए लद गयी भाई के सिर पर.

शकुन'दी को याद है, वह रात जब करमिया दुक्खी को जनकर दर्द से ज़मीन-आसमान एक कर रही थी. पिछले तीन दिन से रात-दिन वर्षा हो रही थी. चारों ओर पानी जमा हो गया था. झोंपड़ी के कोने में रखी ढिबरी का तेल करीब-करीब खत्म हो चुका था. भीगे हुए बदबूदार फर्श पर अधभीगे पुआल का बिछौ बिछा था, जहां नवजात दुक्खी किकियाता हुआ हाथ-पैर रहा था. कमरे को गर्म रखना ज़रूरी था. कोई उपाय न देख शकुन'दी टटोलती हुई घुप्प अंधेरे ओसारे तक गयी और हुए हल का एक टुकड़ा उठा लायी थी.

करमिया निस्तेज आंखों से देखती हुई बोली, "दीदी, मत झोंको. मरे हुए सुआमी की यह निशानी हैं. भला किसा हल जलाता है? उसके साथ मनुस की तकदीर भी जल जाती

मुंह बिचकाती हुई शकुन'दी ने कहा था, "हाय रे देवा! का संसार नहीं है. खसम को खा गयी और अब अपने बच्चे खा जाना चाहती है. आग नहीं जलाने पर यह तो बतास में ए रह जायेगा. तिरिया चरित्तर बंद रख!"... और उसने लक पर पुआल रखकर ढिबरी की लौ दिखा दी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन' दी ने फूंक-फूंककर किसी तरह आग को तेज़ किया और बच्चे के शरीर के साथ-साथ अपनी भीगी हुई साड़ी सेंकने लगी. बच्चा गर्म-गर्म सेंक पाकर चुप हो गया था और साथ-साथ करमिया भी.

अचानक करमिया की देह ऐंठने लगी. दांत पर दांत बैठ गये. शकुन' दी सारी रात रोती, कलपती रही और कभी दुक्खी तो कभी करमिया की देह मलती-चालती रही. सुबह होते ही करमिया अपने शरीर के निछड़े बच्चे को छोड़कर हमेशा के लिए चल बसी. उस मूसलाधार वर्षा में ही टोले के लोगों ने करमिया की अर्थी उठा ली थी और उसे आधा छीहा फूंक-फूंक कर गुरगुराती हुई बाढ़ के पानी में डाल दिया था. तिरने, डूबने चील-कौओं के लिए.

▣

उस दिन भी इसी तरह वर्षा हो रही थी. चारों ओर हहुआती हवा और ठंड से सिकुड़ी झोंपड़ी में गर्म राख को तापता हुआ उसका भाई रामबीन. अचानक अपनी छड़ी घुमाते हुए मुंशीजी आ पहुंचे.

मुंशीजी का परिवार मुद्दतों से गांव में साधारण घराना गिना जाता था. ज़मींदारी के ज़माने में यद्यपि इनके पुरखे 'राज' में पटवारी थे, लेकिन इनकी आर्थिक स्थिति सामान्य थी. ज़मींदारी खत्म हुई. मुंशीजी का परिवार अब नया ज़मींदार बन गया. आज़ादी के बाद जब गांव की मानसिकता में एक नया मोड़ आया तो सभी जल्दी से जल्दी धनी हो जाने की फ़िराक में जुट गये. उनका भोला-भोला निश्छल भाव धीरे-धीरे कमीना, दबंग और चालबाज़ बनता चला गया. पुराने मूल्यों के मलबे पर सभी अपनी इच्छाओं के बेतुके महल बनाने के स्वप्न देखने लगे.

मुंशीजी ने भी ऐसा स्वप्न देखा था. उन्हें कामयाबी मिली, जबकि अधिकांश परिवार मुकद्दमेबाज़ी, जाल-फ़रेब, कर्ज और बनिये-महाजन के शिकंजे में जकड़ गये. सफल व्यक्तित्व के पर्याय बने हुए अकेले मुंशीजी ने अपने को सरकारी तंत्र के साथ जोड़ लिया था. वे मुखिया में चुन लिये गये. विकास के नाम पर मुहैया किये गये सारे कार्य उनके आसपास ही घूम-घाम कर रह गये.

अब मुंशीजी के दरवाज़े पर बड़ा-सा पक्का कुंआ बन गया था. मकान छतदार बन चुका था. बहुतों की ज़मीन इनके कब्ज़े में आ गयी थी. इतना ही नहीं, सरकारीतंत्र की ऊंची-ऊंची कुर्सियों पर इनके परिवार के लोग अधिकार जमाने लगे. एक लड़का इंजीनियर था और एक डिप्टी कलक्टर. इस वर्ष सबसे छोटा बेटा आई.पी.एस. में कामयाब होकर एस.पी. बन चुका था.

जब तक मुंशीजी को अपनी शक्ति का अहसास नहीं हुआ था, तब तक इनकी दृष्टि काफी हद तक समानधर्मी बनी हुई थी. छोटे-बड़े, छूत-अछूत सभी उनके दरवाज़े पर जाते. उनसे बातें करते. उनके दुख-दर्द में बराबरी का हिस्सा बंटाते. यही कारण था कि गांव में जहां अधिकांश परिवार टूटे हुए थे, नये ज़मींदार के रूप में उगे हुए मुंशीजी ही जनप्रतिनिधि चुने जाते रहे. —और उनका प्रतिद्वंद्वी कालेसर जो निम्न मध्यमवर्ग से भी गिरी हुई जमात से ताल्लुक रखता था, हमेशा मुंशीजी के सामने शिकस्त ही खाता रहा.

... लेकिन जबसे शक्ति का सफ़ेद खून उनके जबड़े से लग गया था, उनकी मनःस्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन आ चुका था. जिस तरह आदमखोर जानवर के दांत से एक बार खून छू जाता है तो वह पिशाच की तरह खून का प्यासा बना रहता है. ठीक वही हालत मुंशीजी की हुई.

दो बेटे इंजीनियर और डिप्टी कलक्टर बन चुके थे. अफ़सरों के बीच उनकी कद्र होने लगी थी. बी.डी.ओ. के कार्यालय में जब भी वे जाते तो वहां उन्हें काफी इज़्ज़त दी जाती. किसी भी सरकारी महकमे में उनका काम आनन-फानन हो जाया करता.

जबसे उनका कनिष्ठ पुत्र एस.पी. बना था, तबसे तो उनका रौब और उनकी प्रतिष्ठा काफी बढ़ गयी थी. थाने के दारोगा, इंस्पेक्टर सप्ताह में एक दफ़ा अवश्य ही बिलावजह मुंशीजी के दरवाज़े पर आकर जान-माल की सुरक्षा के बारे में पूछ जाया करते थे. गांव का चौकीदार रात में नियमित उनके घर के चारों ओर चक्कर काटता हुआ रखवाली करने लगा था. उनके खेतों में पक्के चैनल बना दिये गये थे. तीन मील दूर से गुज़रने वाली बिजली की लाइन इस ओर मुड़ गयी थी और घर-आंगन को जगमगाने लगी थी. देखते-ही-देखते कितना बदल गया था. वही मुंशीजी जो कल तक ग़रीबों के प्रतिनिधि कहलाते थे, अब उनके मालिक कहलाने में भी नहीं हिचकिचाते थे. उनकी मानसिकता और मानवीयता में परिवर्तन हो गया था. बात-बात में लोगों पर रौब झाड़ना, उन्हें जेल भिजवाने की धमकी देना अब उनकी बोली का आम मुहावरा बन गया था.

वे सिर्फ बोलते ही नहीं थे, ज़रूरत पड़ने पर थाना-अदालत दौड़कर किसी को भी परेशान कर देते थे. बहुत से परिवार मुंशीजी की कोप-दृष्टि के शिकार बनकर उजड़ चुके थे. बहुत से लोग गांव की सोंधी महक छोड़कर नौकरी-पेशे के लिए कलकत्ता, बंबई जैसे बड़े नगरों में जा चुके थे. कितनों की डीह नीलाम हो चुकी थी और कितने ही कमाऊ सुखी-परिवार मुंशीजी के जाल में फंसकर रेत पर पड़ी मछलियों की तरह छटपटा रहे थे. गांव के लोग उनसे भयभीत रहने लगे थे. पुराने ज़मींदार के भग्नावशेष पर एक नये ज़मींदार वर्ग का उदय हो चुका था. गांव की गलियां वही थीं. खेत वही थे. लोग-बाग वही थे. सिर्फ स्वरूप में परिवर्तन हुआ था. शोषण और दोहन की परिभाषाओं में परिवर्तन हुआ था. अत्याचार के हथकंडे बदल गये थे. जुल्म की तासीर बदल गयी थी. तेवर बदल गये थे.

▣

मुंशीजी ने चूती हुई छतरी ओलती से लटका दी और चेहरे पर फैले पानी की नन्हीं बूंदों को तौलिये से पोंछते हुए पुकारा, "रामबीना! अरे तुम चुपचाप बैठे हुए आग ताप रहे हो? मेरे दरवाज़े पर इतने कुटुंब आये हुए हैं और तुम्हें कुछ लगता ही नहीं है! दस दिन पहले ही कह दिया था कि चौपहरा सत्यदेव की पूजा के दिन मौजूद रहना!"

"काहे की पूजा मालिक?"

"छोटू एस. पी. बन गया है. उसी खुशी में पूजा दे रहा हूं... नहीं तो क्या तुम्हारे श्राद्ध के लिए इतने कुटुंब-कबीले आये हैं! आयी बात समझ में?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"माथा बहुत पिरा रहा है बाबू. बुखार भी है. इस हालत में काम कैसे होगा?" रामधीन घिघिआता हुआ बोला.

"कामचोर, तुम लोगों के पेट में अनाज जाते ही रईसी घुस जाती है. कमीना... सुअर, चल उठ! नहीं गया तो अभी बाप को भेजूंगा, हाथों में हथकड़ियां पहनाकर ले जायेगा." मुंशीजी की आवाज़ में काफी दृढ़ता थी.

शकुन'दी भाई की दशा देखकर टोकती हुई बोली, "जब ज्वर-बुखार से देह छिद रही है तो कमाने कैसे जायेगा! शरीर लेकर ही सब कुछ होता है. किसी दूसरे आदमी का बंदोबस्त कर लीजिए. देह ठीक रहने पर रात-बेरात चौका-बर्तन कर ही दिया करता है."

"तू चुप रह कुबड़ी. रमधीना के साथ-साथ तुम्हें भी जेल की चक्की पीसनी पड़ेगी."

शकुन'दी भी चुप रहने वाली नहीं थी. दहाड़ती हुई बोली, "जाइये जाइये बाबू, बहुत जेहल मैंने देखे हैं. छोटी जाति में पैदा होने का मतलब यह नहीं है कि हम पुश्त-दर-पुश्त आपके जूठे पत्तलों को उठाते रहेंगे. नहीं जायेगा." मुंशीजी चोट खाये सांप की तरह फुफकारते हुए चले गये.

आधा घंटा भी नहीं बीता था कि दारोगा सहित दो सिपाही पहुंच गये. साथ में मुंशीजी भी थे.

रामधीन उन्हें देखते ही कांप उठा. साहस बटोरकर उसने कहा, "आप हुजूर, न्यायी पुरुष हैं. विश्वास नहीं होता है तो मेरा शरीर छूकर देख लीजिए. किस कदर बुखार चढ़ा हुआ है."

मुंशी दांत मसमसाने लगे. दारोगा ने एस.पी. साहब के इज्ज़तदार पिता की मनःस्थिति को देखकर किर्टकिटाकर कहा, "स्साले, अपने बाप को भूल गया था क्या? कुटुंबों के जूठे पत्तल क्या हम उठायेंगे? बी.एल. केस में कुबड़ी सहित तुम्हारा अभी तुरत चालान करता हूं. एक इज्ज़तदार व्यक्ति के साथ मुंह भिड़ाने का मज़ा तुम्हें मिल जायेगा. लहनासिंह, इस सुअर की औलाद की कमर में रस्सा लगाओ!"

करमिया चालान होने की बातें सुनते ही रोने लगी. लेकिन शकुन'दी चुपचाप आग्नेय नेत्रों से उन्हें देखे जा रही थी. रामधीन चुप था. शकुन'दी की लाल आंखें देखकर मुंशीजी तड़क उठे. वे गरजे, "किस कदर देख रही है! लगता है कि चबा जायेगी."

"मैं क्या चबाऊंगी! मेरे घर को चबाने पर तो आप तुले हुए हैं."

"और फट-फट बोलती रहेगी. मुंशी बिहारीलाल का गुस्सा अभी तुमने नहीं देखा है. अभी दिखाता हूं." कहकर वे झोंपड़ी के अंदर घुस गये और कपड़े-लत्ते जो कुछ भी मिले उसे बाहर कीचड़ भरे रास्ते पर फेंक दिया. भात की भरी हुई तसली को ज़मीन पर पटक दिया. भात चारों ओर बिखर गया.

मुंशीजी सामान फेंकते हुए गालियां बके जा रहे थे. एक इज्ज़तदार आदमी का गुस्सा देखकर दारोगाजी की भी हिम्मत कुछ बोलने की नहीं हो रही थी.

करमिया घर की दुर्दशा देखकर रोने लगी. शकुन'दी जो अभी तक गुस्से में थी, अब वह भी विचलित हो उठी. उसका सारा आक्रोश नपुंसक काल-खंड के फैलाव में विलीन हो गया और वहां फैल गयी लाचारगी, शिकस्त और पराजय की स्पंदनहीन अनुभूतियां!

वह भी रोने लगी थी. रामधीन हक्का-बक्का होकर सांघातिक दृश्य को देखने लगा. अनायास वह बोला, "... कीजिए मालिक. चलिए मैं चलता हूं, पेट में लात मत ... बाबू." वह उठ खड़ा हुआ.

शरीर का पोर-पोर टूट रहा था लेकिन वर्षा में भीगता ... वह चल रहा था.

करमिया और शकुन'दी बहुत देर तक सिसकती ... आंगन में बिखरा भात कीचड़ में मिलकर खाने लायक नहीं ... गया था. घर में लकड़ी का एक टुकड़ा भी नहीं था. लगातार ... के कारण करमिया जंगल-झाड़ी से लकड़ियां तोड़कर नहीं ला ... थी. सुबह पुआल झोंक-झोंक कर उसने किसी तरह मांड़ ... बनाया था.

कांपता हुआ शरीर लेकर शकुन'दी का भाई रामधीन ... रहा था. करमिया तृषित नेत्रों से कीचड़ में सने भात को ... रही थी. बादल गरज़ते हुए बरस रहे थे. ठंड से हवा खुद ... रही थी.

▣

रामधीन रात भर मुंशीजी की ड्योढ़ी पर लगा रहा. ... छोटा होकर भी छोटू ने खानदान की मर्यादा को सातवें आ... पर पहुंचा दिया था. इलाके के संभ्रांत व्यक्तियों के अति... बहुत सारे हाकिम-हुक्काम आ डटे थे. चारों ओर मुंशीजी ... खुशामद की जा रही थी. आतिशबाज़ी और पटाखे छूट रहे ...

मुंशीजी को अपने आप पर गर्व हो रहा था. छोटू की ... अपनी कोख पर घमंड कर रही थी. लेकिन रामधीन को ... आप पर घृणा हो रही थी, अपनी बेचारगी पर तरस आ रहा ...

सुबह रामधीन घर वापस लौटा. घर आते ही वह अ... मूंज की बुनी खाट पर गिर पड़ा और फिर कभी नहीं उठ ... उसी खाट को लोगों ने श्मशान तक पहुंचाया.

पति की आंखें मुंदते ही करमिया पछाड़ खाकर ला... गिर पड़ी. शकुन'दी अपने कलेजे को पीटने लगी. करमिया ... पेट में गर्भ अंध बच्चा दुक्खी पल रहा था.

दोपहर होते ही उत्सव समाप्त हुआ. सभी आगंतुक मुं... के दरवाज़े से विदा हुए और साथ-साथ रामधीन की खाट ... चल पड़ी. टोले के लोगों को उस अनुपेक्षणीय प्रश्न की ओर ... की न तो जुर्रत थी और न हिम्मत ही. समय के चक्कर पर ... चिटे अनेकों दस्तावेजों की तरह मौत की साज़िश का एक ... हथचिटटा जुड़ गया था. अनाम. अरक्षित!

▣

रामधीन भाई नहीं रहा. आज करमिया भी श... को छोड़कर चली गयी. ऊपर से सिर पर लादती गयी ... मां-बाप का दुक्खी. शकुन'दी ने हिम्मत से काम लिया. ... भौजाई के मरने के बाद उस टूअर बच्चे को पोसने का ... उसने ले लिया. दिन भर बकरी-गाय के दूध के लिए मारी ... फिरती. खेत-पथार से लेकर लकड़ी-झूरी तक का इंतज़ाम ... ही करना पड़ता. दुक्खी हमेशा उसकी कूबड़वाली पीठ ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता.

जमीन का निहायत ही एक छोटा-सा टुकड़ा विरासत में उसके पास था. सुबह से शाम तक शकुन'दी उस छोटे से खेत में लगी रहती. एक-एक पौद पर निगरानी रखती. क्या मजाल कि एक भी पौधा पीला पड़ जाये या कोई कीट-पतंग किसी पत्ते को काट दे.

जिस साल वारिश नहीं होती, वह वर्ष उसके लिए बहुत ही मुश्किल से गुजरता. खेत में अनाज पैदा नहीं होता और शकुन'दी को कई छोटे-मोटे काम करने पड़ते. गोबर जमा कर कंडियां बनाना और उन्हें सुखाकर बेच आना, उसका एक प्रमुख काम था. इससे उसे इतने पैसे मिल जाते कि अपना तथा दुक्खी का पेट वह किसी तरह भर लेती थी.

धीरे-धीरे दुक्खी बड़ा होता चला गया. शकुन'दी अपनी सारी ममता उस पर लुटा रही थी. उसे आंचल से ढंककर रखती. अगर दुक्खी मवेशी-डांगर लेकर दूर निकल जाता तो शकुन'दी बावरी की तरह उसे पुकारती हुई नदी-नहर एक करने लगती.

प्रत्येक वर्ष कार्तिक पूर्णिमा के मेले में दुक्खी को लेकर जाती. नरसिंह थान के चबूतरे पर दोना भर बतासा चढ़ाती और सिर नवाकर मन्नत मांगती.

पिछले वर्ष जब वह मेले में गयी थी तो एक अलमस्त फकीर ने दुक्खी को देखकर कहा था, "यह लड़का पढ़-लिखकर कमाऊ पूत बनेगा."

शकुन'दी ने उत्सुकता भरी आंखों से उसे देखकर पूछा था, "यह बताइये कि यह अपने बाप का हिसाब चुकायेगा या नहीं?"

फकीर उसकी बातें नहीं समझ सका था. शकुन'दी उसे नीम-फकीर समझकर फटकारती हुई वहां से चल पड़ी थी.

दुक्खी के साथ आत्मिक लगाव देखकर बस्ती की औरतें कुबड़ी शकुन'दी की खिल्लियां उड़ाती हुई कहतीं, "मालूम होता है कि यह इसी के पेट से जन्मा है!"

वह उनके ऊपर बरस पड़ती. गालियां बकती हुई कहती, "पूत और पोसपूत में क्या अंतर होता है कलमुंही! दूसरे की संतान को सिनेह देकर देख कि कितना सुख मिलता है. तुम्हारा खसम अगर मेरी तरह छोड़ गया होता तो आज तक तुम लोग कस्बीखाने में बैठ गयी रहतीं. मुझे देख, सब कुछ भूलकर पोसपूत की औनी-मौनी में खो गयी हूं."

उसे सबसे अधिक दुख उस समय होता जब मुंशीजी के मुहावरे को दुहराती हुई गांव की कुछ औरतें उसे डायन कहतीं. उसकी देह की अकड़ देखकर मुंशीजी उसका मानसिक शोषण करने पर तुले हुए थे. नटखट लड़कों के साथ मुंशीजी के पक्षधर उसे कहते, "शकुन डायन है. यह अपने भाई-भौजाई को चबा चुकी है." सुनते ही शकुन'दी का सारा तेवर कर्पूर वर्तिका की तरह उड़ जाता. उस दिन उसका काम करने में ज़रा भी मन नहीं लगता. रात भर अंधेरे कोने में बैठी मर्द का नाम लेकर विलाप करती तो कभी अपने भाई-भौजाई को याद कर रोती. मुंशीजी का यह अमोघ-अस्त्र हमेशा कारगर सिद्ध होता रहा था. इसे काट फेंकने की क्षमता शकुन'दी में नहीं थी. सचमुच ही जवान भाई-भौजाई की लाशें उसके सामने ही उठ गयी थीं. वह विस्मयभरा प्रश्न आज भी उसके सामने चुनौती दे रहा था, उसका प्रतिवाद वह कभी नहीं कर सकी. इसका नतीजा यह हुआ कि शकुन'दी धीरे-धीरे खोखली, जर्जर और क्षीण होती चली गयी. किसी अपरिचित सत्य की खोज में उसकी सेहत दिन-प्रति-दिन गिरती चली गयी.

▣

बावजूद इसके, उसकी मनःस्थिति उतनी ही तल्ख और तुर्श बनी हुई थी. धानुक टोला का तुलसी जिस दिन बिलावजह गिरफ्तार हो गया था, उस दिन गांव में काफी खलबली मची हुई थी. मुंशीजी ने तुलसी को एस. पी. साहब की कोठी पर चौका-बर्तन करने भेजा था. पंद्रह दिन भी नहीं बीते थे कि वह वापस गांव आ गया. पूछने पर कहा था कि मैं चौका-बर्तन नहीं करूंगा. बात-बात में गालियां कौन सुनता. नौकरी नहीं करनी है.

उसे तो चौका-बर्तन नहीं करना था लेकिन एस. पी. साहब

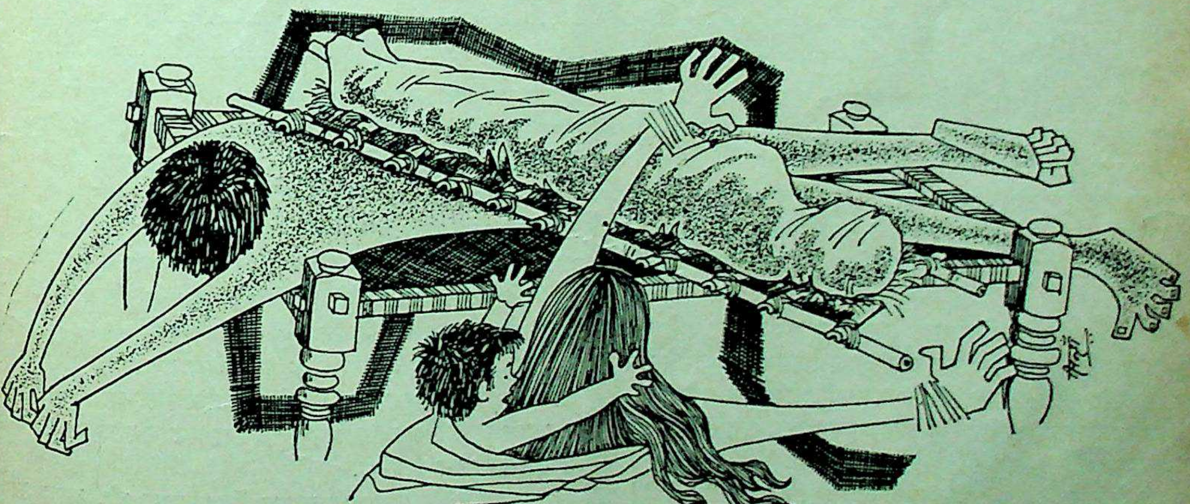

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मुंशीजी को जबर्दस्ती कराना था. आनन-फानन में स्थानीय पुलिस को सूचना दे दी गयी और एक दिन दारोगा सहित कुछ कांस्टेबल गांव पहुंच गये. तुलसी के ऊपर आरोप लगाया गया कि एस. पी. साहब की कोठी से कुछ कीमती जेवरात चोरी कर वह भाग आया है. तुलसी के मां-बाप रोते गिड़गिड़ाते रहे लेकिन पुलिस उसे पकड़ कर ले ही गयी.

उसी दिन टोले के कुछ लड़कों ने राउत संघ निर्माण कर लिया. उन्होंने निश्चय कर लिया था कि धानुकों के ऊपर होने वाले किसी भी जुल्म के खिलाफ़ वे एकजुट होकर आवाज़ उठायेंगे. इसके लिए संचित कोष भी बनाया जाने लगा. घर-घर मुठिया वसूला जाने लगा.

जब मुठिया तसील करने वाला दल शकुन'दी के पास पहुंचा तो वह अपढ़ औरत अजीबो-गरीब बात करने लगी. वह बोली, "जाति संघ बनाकर तुम लोगों ने अपने हक़ में बहुत नुकसान पहुंचाया है. टुकड़े-टुकड़े में बंटी तुम्हारी आवाज़ किसी वर्ग विशेष की आवाज़ नहीं बन सकती. धानुक-कुम्हार आदि जातियों के नाम पर टुकड़ों में मत बंटो . . . ."

उस दिन टोले के छोकड़ों को यह महसूस हुआ था कि शकुन'दी गंवार होकर भी समय से बहुत आगे की बातें करती है. सचमुच ही वे हृदय से शकुन'दी का आदर करने लगे थे.

▣

रोपनी खत्म होते ही आसमान के मेघ खत्म हो गये थे. फसल सूख रही थी. पिछले डेढ़-दो महीने से एक बूंद भी वर्षा नहीं हुई थी. जो साधन-संपन्न थे, वे मीलों दूर से नदी के सोत चीर कर खेतों में पानी ले आ रहे थे.

शकुन'दी के छोटे-से खेत की फसल पानी के बिना सूख रही थी. उसके ऊपर दूर-दूर तक मुंशीजी के खेत पड़ते थे. अपने मजदूरों को लगाकर वे बहुत दूर से पानी ले आये थे. लेकिन शकुन'दी की खड़ी फसल पानी के अभाव में झुलसती ही रही. दुक्खी से अपने खेत की दुर्दशा नहीं देखी जा रही थी. एक रात चुपके से उसने मुंशीजी के खेत का पानी अपनी ओर खींच लिया. अभी दस गज ज़मीन भी नहीं भीगी थी कि मुंशीजी के सिपाही ने दुक्खी को दबोच लिया, "पानी क्या तेरा बाप यहां तक लाया था? स्साले, चोरी से खेत पटाता है. जूठन उठाने में शर्म आती है. उस समय तो धानुक लोग बहुत इज़्ज़तदार बन जाते हो. भाग यहां से, नहीं तो पैर काट दूंगा!"

दुक्खी बुरी तरह पिटकर रोता हुआ घर वापस लौट आया. शकुन'दी उसके शरीर पर लगे तमाचे को सहलाती रही और दुक्खी आकाश में फैले जलविहीन मेघ को देखता हुआ अर्र-दर्र बकता रहा.

उसकी पागलों जैसी हरकत देखकर शकुन'दी डर गयी थी. दुक्खी अर्र-दर्र बके जा रहा था. जब उससे देखा नहीं गया तो उसे प्रलाप करता छोड़कर मुंशीजी के घर की ओर चल पड़ी.

रामघीन भाई के मरने के बाद आज पहला अवसर था जब शकुन'दी उनकी ड्योढ़ी की ओर जा रही थी.

दरवाजे पर पहुंचते ही शकुन'दी चिल्ला पड़ी, "मुंशीजी! दुक्खी पगला गया है. हमारी रोटी की रक्षा करो. खेत में थोड़ा-सा पानी जाने दो. इससे आपका कुछ नुकसान नहीं है. अगर दुक्खिया पागल हो गया तो मुझ कुबड़ी का दुनिया में सहारा नहीं बचेगा."

उसे देखकर मुंशीजी ने व्यंग्य कसा, "भगवान ने तुम्हारी पीठ पर कूबड़ रख दिया है. उस पर इतना ग़रूर है, अगर भली-चंगी होती तो क्या करती! मैं वह दिन भूलता नहीं जब तुमने मेरे खिलाफ़ सभी छोटे लोगों को एकजुट होकर विरोध करने के लिए उकसाया था. आज किस मुंह से पानी मांगने आयी हो? कहां गयी देह की अकड़? मैं अपने खेतों का पानी तुम्हारी ओर उसी हालत में जाने दूंगा जब दुक्खी एस. पी. साहब की कोठी में चौका-बर्तन करने लगेगा. मेरी मानो शकुन, वह दस धुर ज़मीन रखकर क्या करोगी? बेच दो मेरे हाथ और आराम से दोनों हमारे यहां काम करते रहो . . . ."

"ज़मीन नहीं बेचूंगी मुंशीजी."

"उस छोटे-से टुकड़े को रखकर क्या करोगी?"

"ज़मीन का वह छोटा टुकड़ा मुझ गरीब की रोज़ी है बाबू. जब आप हमें आदमी नहीं समझते तो धरती का वह अपना टुकड़ा हमें आदमी कहकर पुकारता है. वह हम गरीबों की चेतना है . . . ."

मुंशीजी ने अपना तेवर बदलते हुए कहा, "अगर सीधी तरह से ज़मीन नहीं दोगी तो कल से हमारे मवेशी तुम्हारे खेत से होकर ही गुज़रेंगे . . . ."

शकुन'दी बिफरती हुई बोली, "शकुन के शरीर में अभी इतना खून बचा है कि अपने रक्त से ज़मीन को पाट देगी. तुम्हारा पानी नहीं चाहिए. महीनों तक एक जून खाकर गुज़ारा कर सकती हूं. पानी बरसने का दुख भी बर्दाश्त कर लेगी शकुन. अगर आसमान के दिल में दया-माया उपजेगी तो पानी बरसायेगा, नहीं तो मिट्टी खाकर वर्ष गुज़ार लूंगी."

वह उनके दरवाज़े से लौट पड़ी. मुंशीजी के ठहाके की अनुगूंज वह बहुत दूर तक सुनती रही थी.

▣

सावन-भादों का आसमान खाली-खाली धरती को निहारता रहा. शकुन'दी का खेत फसल से भर नहीं सका लेकिन उसका शरीर व्याधियों से भर गया. एक से छूटती तो दूसरे रोग द्वारा जकड़ ली जाती. कमज़ोर काठी. ऊपर से फुफकारते रोगों के विषैले छींटों को सहती-सहती वह जर्जर बन चुकी थी.

पिछले पंद्रह दिन से मियादी बुखार से पीड़ित होकर खाट पकड़ चुकी थी. गांव के वैद्य का इलाज बेकार सिद्ध हो चुका था. टोले वालों ने दुक्खी को कस्बे के डॉक्टर के पास शकुन'दी को ले जाने की सलाह दी थी. दुक्खी उसकी बीमारी देखकर काफी उदास था. घर में पैसे नहीं थे. उसे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था. रात-दिन शकुन'दी के पास बैठा हुआ वह उसका हाथ और सिर सहलाता रहता. घर में जो थोड़ा-सा अनाज था, उसे एक जून खाकर वह किसी तरह अपना पेट भर रहा था. उस पर से शकुन'दी की बीमारी.

सुबह से शकुन'दी की हालत चिंताजनक थी. आज उसने कराहना तक बंद कर दिया था. सिर्फ थोड़ी-सी सांसें कलेजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हड्डियों में हरकत पैदा कर रही थी. उसकी हालत देखकर दुक्खी का कलेजा फटा जा रहा था. वह जल्दी-से-जल्दी उसे कस्बे के डॉक्टर के पास पहुंचाना चाहता था.

लगातार सोचने के बाद जब उसे कोई चारा नजर नहीं आया तो वह उठकर मुंशीजी के घर की ओर दौड़ पड़ा.

▣

दुक्खी रुपये लेकर भागता हुआ अपनी झोंपड़ी में घुसा और शकुन'दी के सिरहाने बैठकर बोला, "आंखें खोलो दीदी. देखो, मैं रुपये लाया हूं. मुंशीजी ने दिये हैं. मैं डॉक्टर को लाने शहर जा रहा हूं. तुझे मैं मरते नहीं देख सकता."

शकुन'दी ने अचानक ही अपनी आंखें खोल दी थीं. शायद मुंशीजी का नाम सुनकर ही उसकी लाल-लाल आंखें अपने आप खुल गयी थीं. न जाने उसके शरीर में इतनी ताकत कहां से आ गयी! गरजती हुई बोली, "निकल जाओ इस आंगन से. वर्षों का मेरा विश्वास तूने माटी में मिला दिया. शकुन को नहीं चाहिए ऐसी दवाइयां. इस इलाज से मैं मर जाना पसंद करूंगी."

उसकी फटकार सुनकर दुक्खी रो पड़ा. रोता हुआ वह उसकी देह पर ही लुढ़क गया. शकुन'दी उसका सिर थपथपाने लगी. उसकी आंखें भी बहने लगी थीं. अपने को काबू में रखकर वह बोली, "दुक्खी बेटा! मुंशीजी को ये रुपये लौटा दे. इसने तेरे खानदान को उजाड़ दिया है बेटा. तुम्हारी तरह हजारों लोग हैं जिनकी देह से ये जोंक चिपके हुए हैं. अपने शरीर का खून पीये जाने का तुम्हें अहसास भी नहीं होगा. मैं तो बूढ़ी हो चली हूं. मेरा क्या भरोसा. लेकिन तुम्हें ज़िंदा रहना है . . . ."

"नहीं दीदी, मैं तुझे मरने नहीं दूंगा." रोता हुआ दुक्खी बोला.

"मैं मरूंगी नहीं रे. शकुन अगर मर भी गयी तो बार-बार इसी धरती पर जन्म लेगी. अपनी पीढ़ियों द्वारा चुकाये जाने वाले हिसाब-किताब देखती रहेगी. जा रुपये लौटा दे. ये रुपये मुंशीजी के मुंह पर फेंक देना.

अचानक शकुन'दी की आवाज़ लड़खड़ाने लगी. वह टूटती हुई आवाज़ में बोलती रही, "रुपये . . . ज़रूर . . . लौ . . . टा . . दे . . . ना . . . दुक्खी . . .बेटा . . .दुक्खी!" उसकी आवाज़ हमेशा के लिए शायद बंद हो चुकी थी. सिर एक ओर लुढ़क गया था.

शकुन'दी को मृत देखकर दुक्खी न तो रोया और न चिल्लाया ही. वह एकटक उसकी अधखुली आंखों को ही देखता रहा. उसे लग रहा था कि खाट पर कोई प्रकाशपुंज लेटा है जिसकी आंखों से रोशनी की धारा अजस्र प्रवाहित हो रही है, जो गांव के अंधेरे को धोती हुई आगे बहती चली जा रही है.

दुक्खी ने अपनी हथेली में मुड़े नोटों को देखा नोटों की बेतरतीब सिलवटों के बीच मुंशीजी के अनगिनत चेहरे उसे घूरते हुए लगे.

दुक्खी ने जल्दी से अपनी हथेली भींच ली और मुंशीजी की ड्योढ़ी की ओर दौड़ पड़ा. उस समय आसमान बिलकुल स्वच्छ था. दोपहर की छनी साफ धूप धरती पर गिर रही थी. □

विशेष भूअर्जन अधिकारी, टेनूघाट योजना
गुरु गोविंदसिंह मार्ग, हजारी बाग, बिहार.

ग़ज़लें

एक

कुछ दूर मेरे साथ चला, और खो गया,
मेरा नसीब फूल नहीं, आग बो गया.

मंज़िल समझ के रुक गया, रस्ते के दरमियां,
मेरा वजूद एक तमाशा-सा हो गया.

घर से चला था सोच के, पा जाऊंगा हयात,
मुझमें जो होश था, वो मुझे ही डुबो गया.

कैसा अजीब शख़्स था, जो दरमियाने जंग,
मुझको जगाके दोस्तो, वो खुद ही सो गया.

'जाफ़र' नयी ग़ज़ल के भी, सूरज उगाओ तुम,
अगला जो वक़्त गुज़रा वो लफ़्ज़ों को धो गया.

▣ रफ़ीक़ जाफ़र

दो

गम के साये क्यों फैले हैं दायें बायें, तुम ही बोलो,
जीवन को क्या लौ देंगी धुंधली आशाएं, तुम ही बोलो?

गये पुराने, नये मसीहा भी वैसी बातें करते हैं,
हम फिर से इतिहास दुखों का क्या दुहरायें, तुम ही बोलो?

अपनी-अपनी पीड़ाओं से चीख रहे हैं बस्ती वाले,
किसके घर की दीवारों से सिर टकरायें, तुम ही बोलो?

भीड़ भरे बाजार छोड़कर खामोशी को अपनाया था,
खामोशी के डसे हुए किसको अपनायें, तुम ही बोलो?

तब भी समता की बातें थीं, अब भी समता की चर्चा है,
समता के आश्वासन कब तक गले लगायें, तुम ही बोलो?

हम समझे ये हाथ तुम्हारे बिककर तुम संग रह पायेंगे,
गली-गली बिकने की गाथा किसे सुनायें, तुम ही बोलो?

▣ सुदर्शन पानीपती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लेवर गर्ल

• लोचन बख्शी

दफ्तर के लंबे बरामदे को पार करता हुआ वह अपने कमरे की ओर बढ़ था. फ़र्शी सलामी की एक लंबी शृंखला उसके साथ-साथ चल रही थी. दफ्तर के बाबू उसे देखकर रुक जाते. चपरासी सावधानी से खड़े सलाम बजा लाते. वह मुस्कराकर उनकी ओर देखता, हल्का-सा सिर हिल सलाम कबूल करता और लापरवाही से आगे बढ़ जाता.

अपने कमरे के पास जाकर वह रुक गया. कमरे के बाहर उसके नाम की लगी हुई थी जिसके नीचे मोटे शब्दों में लिखा हुआ था 'इन'—'आउट'. उंगली से स्प्रिंग को हिलाया और 'आउट' शब्द को ढांप कर अंदर चला गया कमरे में उसकी मौजूदगी इसी 'इन'—'आउट' पर आधारित थी.

कमरे में प्रवेश करते ही उसे एक परिचित-सी महक महसूस हुई. मुस्क उसने अपना ब्रीफकेस रख दिया और फोन का बटन दबाया. उसके फ आवाज़ गूंजी :

"गुड मॉर्निंग सर!"

"मॉर्निंग! गेट मी मिस नीलोफर!"

"यस सर!"

थोड़ी देर में मिस नीलोफर अपनी अधकटी घुंघराली जुल्फें झटकती कमरे में दाखिल हुई.

"नीलोफर! तुम आज सवेरे मेरे कमरे में आयी थीं क्या?"

"जी!" उसने आंखें झपक कर उसकी ओर देखा.

"कमरे में बसी हुई सुगंध तुम्हारी चुगली खा रही थी."

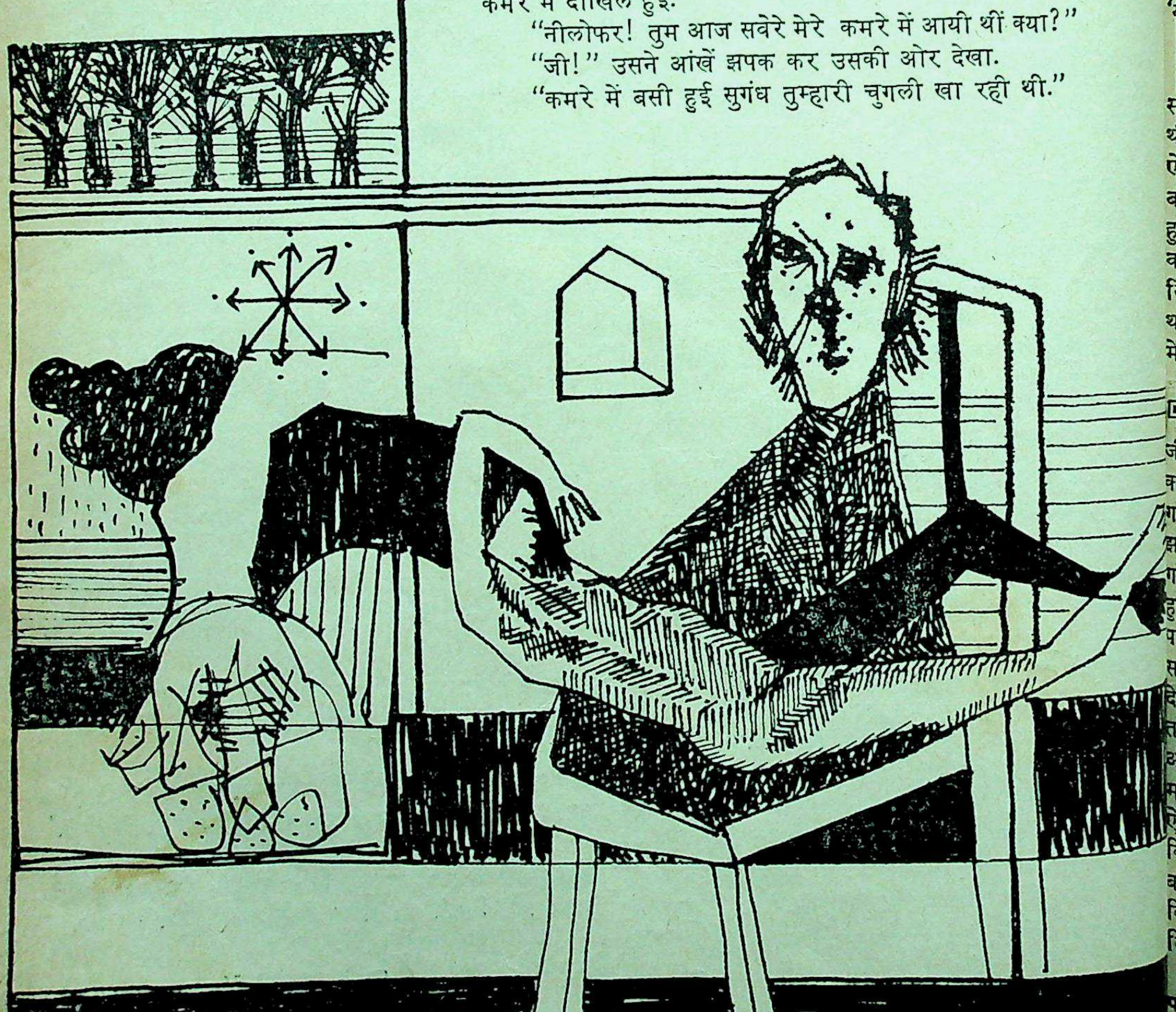

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लैवेंडर मेरा फेवरिट सेंट है."

"मेरा भी."

"हाऊ स्वीट!"

थोड़ी देर बाद जब मिस नीलोफर अपने कमरे की ओर लौट रही थी तो उसने अपनी साड़ी का पल्लू इस अंदाज़ से झटका कि लैवेंडर की महक सारे बरामदे में बिखर गयी. बनवारी लाल चपरासी ने रिज़करामं दफ्तरी से कहा, "यार! जी चाहता है, किसी दिन इससे कहूं, मेम साहिबा, तुम्हें क्या फायदा है इतनी खुशबू लगाने का, आधी से ज़्यादा तो हम चपरासी लोग ही लूट लेते हैं." मगर मिस नीलोफर को कौन समझाये. उसे तो वह लड़कियां भी नहीं समझा सकतीं जो उसके साथ एक ही मेज़ पर बैठ कर काम करती हैं. कई बार वह साहब की पेशी भुगताने के लिए तैयार होती तो वह खिलखिला कर हंस देती. किसी-किसी को मज़ाक सूझता.

"मैंने कहा, क्या बात है. आज लिपाई-पुताई बहुत हो रही है. डू यू हैव ए डेट?" और उसकी अनुपस्थिति में कहती, "बुद्धू है. यह नहीं समझती, बास तो इसे एक स्प्रेगन की तरह 'यूज़' करता है. केवल मात्र अपने कमरे को महकाने के लिए."

"स्प्रेगन और बिगगन!" वह ठहाका मार कर हंसती.

इधर बिगगन कितना चतुर था. वह जानता था कि किसका सदुपयोग कहां किया जा सकता है. उनमें से कोई उसका कांटैक्ट थी, कोई पब्लिक रिलेशंस के लिए सुरक्षित, कोई डेकोरेशन ऐक्सपर्ट थी और कोई डेकोरेशन पीस! नीलोफर के चले जाने के बाद उसने एक गहरा सांस लिया. लगता था, कमरे में बिखरी हुई तमाम खुशबू वह अपने अंदर समा लेना चाहता है. इसके बाद वह अपनी आंखें बंद करके अपनी कुर्सी में धंस गया जिसका स्प्रिंग सहसा चरमरा उठा और गद्दे का फोम भीतर पिचक गया. थोड़ी देर तक वह मौन-सा बैठा रहा, यूं जैसे कोई योगी समाधि में खो जाता है.

◘

जीवन में कितने उतार-चढ़ाव हैं. आज तक क्या खोया है क्या पाया है. यह सब उसका मन ही जानता था, पर मन की गहराइयों में कौन पैठ सकता है. फिर भी उसने अपने अंदर झांकने की कोशिश की. भीतर घोर अंधियारा था. दूर तक गहराइयों में उतरती परतें थीं. तह-दर-तह बनती और मिटती हुई परछाइयां! कुछ देर वह इस दृश्य में खो-सा गया. कई जाने-पहचाने चेहरे उसके सामने उभरने लगे. अनगिनत दृश्य उसके सामने से गुज़रने लगे. उसकी आंखें कैमरे के फोकस की तरह दिखतीं, परखतीं और आगे बढ़ जातीं. जाने उसे किस चीज़ की तलाश थी. शायद यह वह स्वयं भी न जानता था. फिर भी अपने अंदर झांकने की कोशिश उसे बेहद सुखद प्रतीत हुई. उसे यूं महसूस हुआ जैसे हर शै ऊपरी और फालतू है. इसमें कुछ भी तो ऐसा नहीं जिसे वह अपना कह सके. भीड़ में घिरा हुआ व्यक्ति कितना अकेला हो सकता है, इस बात का अनुभव उसे आज पहली बार हुआ. देखने में वह एक संपूर्ण व्यक्ति था. पर वास्तव में वह कितना अपूर्ण था, यह वही जानता था. उदासी और वीरानी, जिसकी झलक उसने आज पहली बार देखी, इसका उसकी ज़िंदगी से दूर-दूर का भी वास्ता न था. फिर भी वास्तविकता यही थी और उसकी अपनी ज़िंदगी जिसमें वह जी रहा था, उसकी तुलना में नाटक दिखाई दी. सहसा घबरा कर उसने आंखें खोल दीं. वही दफ्तर का कमरा था, सजी-सजायी मेज थी और घूमने वाली कुर्सी जो उसके बोझ तले दबी, चिल्ला कर रोष व्यक्त कर रही थी. दूसरे क्षण, वह सारा दृश्य ओझल हो गया. अपने अंदर झांकने का उसका अंदाज़ कुछ इस तरह था जैसे कभी-कभी वह अपने दफ्तर का इंस्पैक्शन किया करता था, "यह मेज़ यहां से हटा दो. यह कुर्सी वहां रख दो, इस रैक को उधर खिसका दो." पर अपने मन की भीतरी परतों को कोई कैसे खिसकाये!

वह अपने दफ्तर का प्रमुख अधिकारी था. सफलता की सीढ़ियां चढ़ता हुआ वह इस पद तक पहुंचा था. अपने दफ्तर के हर छोटे-बड़े कर्मचारी को वह केवल पहचानता ही न था बल्कि उनका आधा नाम लेकर पुकारता था. वह उनकी ज़िंदगी के छोटे-बड़े मोड़ों से भली-भांति परिचित था और हमेशा उनकी ज़रूरतों का ख्याल रखता था.

"हमारा साहब तो देवता है." उसके दफ्तर के कर्मचारी उस पर जान छिड़कते थे और वह खुश था.

"हूं, देवता!" उसके अंदर की परतों में कोई हलचल होती, कोई काली छाया उसे कहते हुए प्रतीत होती, 'देवता स्वरूप..' वह जानता था कि वह क्या कहने जा रही है. सहसा वह उस छाया का गला घोंट देता.

'ओह, शट अप!' और वह उसकी उभरती हुई आवाज़ को दबाकर अंदर-ही-अंदर किसी गहरी खाई में दफ़्न कर देता.

बाहर से वह बड़ा आकर्षक व्यक्ति था. जब वह हंस-हंस कर लोगों से मीठी-मीठी बातें कहता तो वह उस पर कुर्बान हो जाते. अधेड़ उम्र में जाकर आदमी ढलना शुरू हो जाता है. मगर वह तो और भी निखरता था. मित्र पूछते, "तेरी सदाबहार जवानी का राज़ क्या है?" वह हंसता और कहता, "त्याग!"

'फ्रॉड' उसकी अंतरात्मा कहती. परतों में फिर हलचल होती और उसके अंदर कोई आवाज़ गूंजती, 'हमें सब मालूम है त्यागी महोदय, तुम्हारा नाम तो त्यागी की अपेक्षा भोगी अधिक अच्छा है.' अंदर की आवाज़ अंदर ही रह जाती.

उधर उसके दफ्तर की लड़कियां एक-दूसरी को छेड़तीं, "भई, आज तो बहुत चमक रही हो. क्या बात है? आज कोई मीटिंग तो नहीं?"

"मीटिंग!" वह इस अदा से बोलती जैसे सारे वाक्य में केवल मात्र एक यही भावपूर्ण शब्द हो. मगर उनका अंदाज़ इतना सरल होता जैसे कोई युवती अनजाने में अपनी साड़ी की फॉल ठीक करती है.

"बॉस ने कुछ लोगों को आज एडवाइज़री कमेटी के लिए बुलाया है लंच पर."

"ओह! ए डेट विद द बॉस."

चोर नज़रें एक-दूसरी से टकरातीं और फिर पलक झपक कर झुक जातीं. उन दिनों उसने अपने दफ्तर में एक आंदोलन शुरू किया था 'मिस मील डे'.

"तो आज दोपहर का खाना बचाया जा रहा है मिस!" शरारत उनकी आंखों में चमकती. हां, ठीक ही तो है, "मील ए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस; ए डे" फिर एक हंसी का फव्वारा फूटता. हर एक अपनी हंसी को रोकने का प्रबल यत्न करती. वेनिटी बैग में से रूमाल को निकाला जाता और फिर वातावरण में यूडिकोलोन की सुगंध बिखर जाती.

"बॉस!" उसकी सेक्रेटरी ने उसे संबोधित किया.

"हूं!" उसने बिना ध्यान दिए हुए कहा और झुक कर मेज़ पर पड़ी फाइल को देखता रहा.

'बॉस' शब्द में जैसे उसका सारा-का-सारा आकार सिमट गया था. फिर भी उसकी अंतरात्मा ने इस संबोधन को स्वीकार नहीं किया.

▣

बाहर और भीतर का यह संघर्ष भी अजीब है. वह कई बार सोचता; यह लड़की जो मेरे सामने बैठी है, उम्र में भले ही मुझ से कितनी छोटी है तब भी मेरे मन ने इसको कभी छोटी नहीं माना. मैं हमेशा इससे समानता का व्यवहार करता हूं. 'बॉस' कहने से तो यूं लगता है जैसे बाप और संतान का संबंध होता है. उसका बस चलता तो जनरेशन-गैप को दफ्तरी फाइल पर लिखित फजूल टिप्पणी की तरह फाड़ कर रद्दी की टोकरी में फेंक देता.

"भई, तुम मुझे अपना दोस्त समझा करो. मैंने कभी तुम्हें इस बात का अहसास होने दिया कि तुम मुझसे छोटी हो?"

'ओह शट अप यू फ्रॉड!' उसकी अंतरात्मा बोलती 'तेरा बस चलता तो तू यह असमानता की खाई कब से पाट जाता. मगर तू तो कुर्सी पर बैठा है, शाबाश मेरे शेर! यह अलग बात है कि उर्फ़-आम की भाषा में लड़कियां तुम्हें पेपर-टाइगर, डार्लिंग-डियर और हार्मलेस-डॉल कहती हैं.'

कभी-कभी वह अपने अंदर झांकता. बिल्कुल इस तरह जैसे कोई अपने घर के चोर तहखाने में झांक लेता है. पर उसे हर बात का ध्यान होता है कि 'नंबर दो का माल' किस नुक्कड़ के गुप्प अंधेरे में छुपा है. कालूंच की कोठरी से निकलकर वह फिर से चौकस होकर बैठ जाता.

"बॉस!" उसकी सेक्रेटरी उसे पुकार रही थी. उसे अनुभव था, कुछ दिनों से उसकी सेक्रेटरी कुछ ज्यादा ही चुस्त बनती जा रही थी. उसकी अदाओं में निखार आ गया था. वह अल्हड़ छोकरी ज़रूरत से ज्यादा बन-संवर कर दफ्तर आने लगी थी और जब कोई लड़की पहनने-संवरने की अदा सीख लेती है तो उसके लिए प्रशंसक नज़रें भी अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं. पहली बार जब वह आयी थी उसने मैक्सी पहन रखी थी. फिर उसकी मैक्सी मिडि में बदल गयी, फिर मिडि मिनी में. ज्यों-ज्यों प्रशंसक नज़रें उसकी ओर बढ़ती जातीं, उसकी स्कर्ट की लंबाई घटती जाती.

'क्या ख्याल है?' उसने अपने मन से पूछा.

'छोकरी के इरादे नेक नहीं हैं.'

अगले क्षण उसने उसको अपने पास बुला भेजा और कहा, "बीबी, यह बात तो तुम जानती हो कि इस दफ्तर का आउटपुट बढ़ाना मेरा कर्त्तव्य है. दिल की धड़कनें बढ़ाना नहीं. मगर जिस बात का तुम्हें पता नहीं है वह यह है कि मेरा दिल बहुत कमज़ोर है." और अगले दिन उस बीबी की बदली किसी दूसरे अफसर के पास हो गयी. सारे दफ्तर में साहब की नफ़ासत पसंदगी की धाक जम गयी.

"नया साहब तो एक-एक करके सारे कमरों में गुलदस्ते सजा देगा." ऐसी छोकरियां, जो दफ्तरी काम-काज की अपेक्षा 'डैकोरेशन पीस' अधिक थीं, 'गुलदस्ता' कहलाती थीं. उसे विश्वास था कि गुलदस्ते का भी अपना एक मुकाम है.

उसने दफ्तर की ब्रांचों में एक-एक करके गुलदस्ते सजाने शुरू कर दिये और दिल-ही-दिल में अपनी कुशलता पर मुस्कराता रहा. पर उसका मन जानता था कि हर गुलदस्ते की अपनी विशेषता है. इन गुलदस्तों के माध्यम से उसने हर एक ब्रांच से एक सीधी हॉटलाइन स्थापित कर ली थी.

"सर, आप भी कमाल करते हैं. आप यह नहीं जानते कि लोग अपनी पोजीशन का अनुचित लाभ उठाते हैं. और आप हैं कि हर ऐरे-गैरे को मुंह लगा लेते हैं."

"नीलोफर, तुम किसकी बात कर रही हो?"

"नसरीन की." और उसके अंदर का दरिंदा बोला, 'क्यों न मुह लगाऊं? क्या कमी है उसमें. उस जैसी तो तू भी नहीं' कंबख्त. पर वह केवल इतना ही कह पाया, "नसरीन! क्या हुआ नसरीन को? नसरीन कोई ऐरी-गैरी नहीं है."

"हां, आजकल उसी के चर्चे हैं. कल छोकरियां कह रही थीं. . . ."

"क्या कह रही थीं?"

"बस यही कि बॉस ने ज़्यादा सिर चढ़ा रखा है."

"ओह नो, शी इज ए स्वीट गर्ल. क्लेवर गर्ल, आई लाइक हर."

मगर उसके अंदर की परतें हिल रही थीं, 'तुम्हें क्या है? नसरीन जैसी एक भी लड़की तुम सबमें नहीं.'

मैं लोगों जैसा नहीं तो क्यों? क्या मैं इंसान नहीं हूं? नहीं हूं? और उसके अंदर का इंसान कहता, 'अजी मर्द हैं आप तो मर्दे-मैदान हैं,' मगर उसकी जुबान कहती, "हां नीलोफर शायद तुम ठीक ही कहती हो. आई शुड बी डिसक्रीट."

"मर्दों का क्या दोष है. वह मरी है ही ऐसी. होंठों पर मुस्कान यूं लिये फिरती है जैसे इनविटेशन का साइनबोर्ड हो. बस थोड़ी सी फ्लैट्री, थोड़ी-सी कोकिट्री और अगला हुआ चित्त!"

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता."

"आपके साथ नहीं हो सकता, यह आप समझते हैं."

"अरे भाई, मैं तो अपने दफ्तर में काम करने वाली लड़कियों को कभी लड़कियां समझता ही नहीं."

"यह बात अलग है. मर्द तो फिर मर्द होता है."

"हम तो अभी तक. . . ." अभी वह इतना ही कह पाया कि उसके अंदर का मानव बोल उठा : 'फ्रॉड, तुम तो आंखें मूंद कर इस दलदल में फंसना चाहते थे. तुम्हारा बस चलता तो कब से इस आग में कूद पड़ते. यह तो मैं ही हूं.' और उसके होंठों पर एक मुस्कराहट खिल उठी.

"तुम क्या जानो, सब लड़कियां एक जैसी होती हैं."

"जी नहीं, अगर मैं भी उन जैसी होती तो आज आप अंदाज़ कायम न रख सकते. पर मैं अपनी बात नहीं कर रही, नसरीन की बात कर रही हूं. शी इज़ ए डर्टी गर्ल. कहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बॉस से हर बात मनवा सकती हूं. किसी को नौकरी दिलवानी हो, किसी कुलीग को डांट पिलवानी हो, कौन है, जिसकी सिफारिश मैं करूं और बॉस एडजस्ट न करे."

"ओह, वाट ए बैड गर्ल!"

"नॉट बैड सर! शी इज ए बी... बी ... बिच!" वह मुस्करायी.

"नीलोफर, तुम्हें अपनी भाषा सुधारनी चाहिए. आई लाइक हर."

"इज़ दिस व्हॉट यू लाइक?"

"हां, और फिर तू भी क्यों बैड गर्ल नहीं बन जाती!"

"अगर मैं तुल जाऊं तो आपकी मात अवश्य है."

"नहीं, इंसान को कुछ अपने ऊपर भी कंट्रोल होता है."

"कंट्रोल! माई फुट! अगर औरत तुल जाये तो उसके सामने कोई मर्द नहीं टिक सकता."

"मजबूरी!"

"आप तो मजाक उड़ा रहे हैं. अगर मैं सीरियस हो जाऊं तो. . . . "

"तो होती क्यों नहीं?"

"हूं!"

"लगाओ शर्त."

"आर यू सीरियस?"

"ऑफ कोर्स!"

"आई लाइक इट!"

"आई लव इट!"

"ओ.के. ट्राई योर बैस्ट."

"ट्राई योर वर्स्ट!"

और चोर तहखाने की कालूंच बिखरने लगी. उसकी आंखें खुली थीं मगर कमरे में गुप्प अंधेरा था. उसने हाथ पसारकर बिजली का बटन टटोलने का भरसक प्रयत्न किया. पर अंधेरे की नर्म रेशमी पकड़ ने उसे जकड़ लिया. लैवेंडर की सुगंध थी जो उसकी नाक, मुंह और सांस के रास्ते उसकी नस-नस में बसती जा रही थी.

▣

काफी देर बाद जब वह अपने कमरे के बाहर निकला तो शाम का अंधेरा गहरा हो चुका था. बाहर बरामदे में सांय-सांय करती हुई खामोशी उसका स्वागत कर रही थी. बरामदा सुनसान और वीरान था. दफ्तर के सभी कर्मचारी जा चुके थे. वह उन अफसरों में से था जो कर्मचारियों का दफ्तर में देर तक बैठे रहना अयोग्यता का चिह्न मानते थे. उसका चपरासी बाहर बैठा ऊंघ रहा था. उसे देखकर बेदिली से उठ खड़ा हुआ. दिन भर की बोरियत और उकताहट से कहीं अधिक उसके चेहरे पर हैरानी बिखरी हुई थी. जैसे कह रहा हो 'अच्छा तो आप भी. . . ' उसे यूं अनुभव हुआ जैसे चोर तहखाने में नंबर दो के माल को खुर्द-बुर्द करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया था. एक दोषी की तरह उसने अपनी निगाहें गिरा लीं और चुपचाप आगे बढ़ गया.

अगले दिन हर कारिंदे की ज़ुबान पर एक ही बात की चर्चा थी. बिगगन के ट्रांसफर ऑर्डर टेलीफोन से आये थे. दूर किसी जंगल में नये बनने वाले कारखाने का चार्ज उसे मिल रहा था.

ग़ज़ल

सबकी बिगड़ी को बनाने निकले,
यार हम तुम भी दिवाने निकले.

धूल है, रेत है, सेहरा है यहां,
हम कहां प्यास बुझाने निकले.

इतनी रौनक़ है कि दिल डूबता है,
शहर में खाक उड़ाने निकले.

हर तरफ़ शोर-ए-क़यामत है बपा,
और हम गीत सुनाने निकले.

इन अंधेरों में किरन जब ढूंढी,
सबके हंसने के बहाने निकले.

चांद को रात में मौत आयी थी,
लाश हम दिन को उठाने निकले.

उम्र बरबाद यूंही कर दी 'हसन'
ख्वाब भी कितने सुहाने निकले.

▣ हसन कमाल

"तो अब जंगल में मंगल होगा!"

"हां साहब, नयी फसल, नये शगूफे, नया बौर, नयी सुगंध!"

"अगर रह जाता तो एक-एक से निपट लेता."

इतनी देर में लंबे बरामदे के दूसरे सिरे पर मिस नीलोफर आती हुई दिखाई दी. उसने नयी साड़ी का पल्लू बड़े नखरे से झटका और टिप-टिप करती हुई आगे बढ़ गयी.

बनवारी लाल चपरासी ने रिज़कराम दफ्तरी से कहा, "यार, आज तो खुशबू भी बदल गयी."

और इस बदली हुई सुगंध पर छोकरियों की टिप्पणी थी, "इसका अपना क्या है, स्प्रेगन तो स्प्रे ही करती है. सुगंध चाहे कैसी भी हो. पसंद मालिकों की."

"इस छोकरी ने तो कमाल ही कर दिया. बैठती हमारे पास थी मगर हॉटलाइन कहां जोड़ कर रखती थी."

"क्लेवर गर्ल!"

"माई फुट!" □

● देशांतर प्रसारण प्रभाग, आकाशवाणी, नयी दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमेंट की बोरी

■ *योशिकी हयामा*

योशिकी हयामा (१८९४-१९४५) जापानी कथा-साहित्य में एक महत्वपूर्ण नाम है. मजदूर जीवन पर लेखनी चलाने और उनके लिए काम करने के कारण इन्हें जेल की सजा भी भुगतनी पड़ी. मजदूर जीवन के महत्वपूर्ण व विविध अनुभवों ने इनके विषयों को नये आयाम दिये, जो जापानी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ हैं. प्रस्तुत कहानी एक मजदूर के जीवन की त्रासदियों का चित्र भर ही नहीं है, उन्हें संवेदनाओं के स्तर पर जीती भी है.

योजो मतसदो सीमेंट की बोरियां खाली कर रहा था. अपने जिस्म के बहुत सारे अंगों को जैसे-तैसे सीमेंट की धूल से बचा रहा था, पर उसके बालों और मूछों पर सीमेंट की एक मोटी पपड़ी जम गयी थी. वह अपनी नाक सुनक कर सीमेंट की उस पपड़ी को निकालने के लिए कुनमुना रहा था जिसके कारण नाक के भीतर के बाल तीरों जैसे तीखे, तुर्श व अकड़े पड़े थे. पर सीमेंट घोलने वाली मशीन, हर मिनट बाद दस रुवाड़े तैयार करके बाहर फेंक रही थी और उसको भरते रहने में किसी तरह की ढील की कोई गुंजाइश नहीं थी.

योजो एक दिन में ग्यारह घंटे काम करता था. इन ग्यारह घंटों के दौरान उसको एक बार भी ढंग से नाक साफ करने का समय न मिलता. जब दोपहर को थोड़ी देर की छुट्टी होती तब तक उसकी भूख चमकी होती और वह रोटी को, बेगार के काम की तरह, जल्दी-जल्दी निगल जाता. उसको आशा थी कि तीसरे पहर की छुट्टी के समय उसको मौका मिलेगा, पर जब तीसरा पहर आया तो उसे ख्याल आया कि उसे तो सीमेंट घोलने वाली मशीन के पुर्जे साफ करने हैं. तीसरे पहर तक उसको महसूस होने लगा कि उसकी नाक सीमेंट की बनी हुई है. दिन जैसे-तैसे पूरा हो रहा था. थकावट से उसकी बाहें शिथिल हो चुकी थीं और बोरियां ढोने के लिए उसको अपना पूरा ज़ोर लगाना पड़ रहा था. जल्दी-जल्दी बोरी उठाते हुए उसने देखा कि सीमेंट में, लकड़ी की एक छोटी-सी डिब्बी पड़ी है.

इस डिब्बी में क्या हो सकता है? उसको सीमेंट में डिब्बी देखकर अचंभा हुआ. पर इस अचंभे के बारे में सोचते समय मशीन की गति मंद नहीं की जा सकती थी. हड़बड़ा कर उसने सीमेंट उठाया और मिलाने वाले हौज में फेंक दिया. बेलचा उठाकर वह फिर सीमेंट ढोने लगा. मन ही मन वह बुदबुदाया, 'समझ नहीं आया भई, यह डिब्बी सीमेंट की बोरी में कैसे आ गयी?' उसने डिब्बी उठायी व कमीज़ की निचली जेब में डाल ली, 'साली का भार तो है ही नहीं. इसमें और कुछ हो न हो, पैसे नहीं होने के.' इस ज़रा-सी देर में ही वह अपने काम से पिछड़ गया था और अब उसको दुगनी फुर्ती से सीमेंट ढोकर मशीन में लाना पड़ रहा था. अपने आप चलने वाली, अंधाधुंध मशीन की तरह उसने एक बोरी और उलटायी और हौज़ में नया सीमेंट भरने लगा.

आखिर मशीन की गति कुछ घटी और फिर रुक गयी. योजो की दिन की छुट्टी का वक्त हो गया था. उसने मशीन के साथ लगे रबड़ के पाइप को उठाया और मुंह धोने लगा. फिर उसने रोटी वाला डिब्बा उठाया, गले में टांगा और अपने क्वार्टर की तरफ चलने लगा. एक ही ख्याल उसके दिमाग़ पर छाया हुआ था कि पहले रोटी पेट में पड़नी चाहिए . . . और इससे पहले कहीं शराब का गिलास मिल जाये तो बस. . . !

वह अब बिजलीघर की इमारत के सामने से गुज़रा. बनवायी का काम तकरीबन पूरा हो चुका था और जल्द ही बिजली मिलने वाली थी. सांझ के धुंधलके में उसके जिस्म में एक कंपकपी-सी दौड़ गयी. जिस किनारे से वह जा रहा था, उसके किनारे-किनारे नदी बह रही थी—दूधिया झाग के नीचे से आती आवाज़ उसकी रफ्तार का संकेत दे रही थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऐसी की तैसी' योज़ो के मुंह में जैसे कुनीन घुल गयी, "हद ही हो गयी. . . कमाल है. . .उसको फिर बच्चा होने वाला है. . .!" उसका ध्यान क्वार्टर में कुलबुलाते छः बच्चों की तरफ गया और फिर अपनी बीवी की तरफ, जिसे सातवां बच्चा होने वाला था. अपनी बीवी के बारे में सोचकर उसका मन कच्चा-सा हो गया, जो एक के बाद एक धड़ाधड़ बच्चे जने जा रही थी. यह सोचकर वह जैसे उदासी से घिर आया, 'अब तो सोच कुछ' वह मन ही मन बोला, 'रोज़ की एक येन 60 सेन मजदूरी मिलती है जिसमें 5 सेन की पड़ी (तोल का पैमाना) के हिसाब से दो पड़ी चावल लेने होते हैं. रहने-सहने का खर्चा भी 60 सेन हो जाता है. एक साठ तो इसी में चले गये, अब दारू का घूंट कहां से मिलना है!'

एकदम उसको जेब में पड़ी डिब्बी का ख्याल आया. जेब में से डिब्बी निकालकर उसने अपनी पतलून की पीठ से रगड़कर उसका सीमेंट साफ किया. डिब्बी के ऊपर कुछ लिखा नहीं था पर एक कतरन से बंधा खत था.

"मैं नमूरा सीमेंट कंपनी में नौकरी करती हूं. मेरा काम सीमेंट की बोरियां सीना है. जिस नौजवान से मेरी सगाई हुई थी वह भी इसी कंपनी में काम करता था. उसका काम था पिसाई की मशीन में पत्थर फेंकना. 7 अक्तूबर की सुबह की बात है, जब वह एक भारी पत्थर मशीन में फेंकने की कोशिश कर रहा था उसका पैर कीचड़ में फिसल गया और वह पत्थर समेत मशीन में जा पड़ा. उसके साथियों ने उसे मशीन से खींचने की कोशिश की पर व्यर्थ . . . डूबते आदमी जैसा वह पत्थर के साथ नीचे ही जाता गया. पत्थरों के साथ उसका शरीर भी मशीन ने पीस दिया और जो चूरा निकला, वह गुलाबी चूरा था. यह चूरा भी ढलाई वाली पेटी के सहारे मशीन पीसने वाली चक्की पर जा पहुंचा और वहां से इस्पात की चक्की में चला गया. वहां से चूरा भट्टी पर पहुंचा और पक कर सीमेंट के रूप में तैयार हो कर बाहर निकल आया. उसकी हड्डियां उसका मांस, उसका दिल. . .और बाकी सब कुछ पिस कर चूरा हो गया था. हां. . .और मेरा होने वाला पति मुट्ठी भर सीमेंट बनकर रह गया था. बची थी सिर्फ उसकी कमीज़ की एक कतरन. आज सारा दिन मैं बोरियां सिलती रही हूं जिसमें उसका बना सीमेंट भरा जायेगा. . .

कल ही यह सीमेंट बना था और आज मैं चिट्ठी लिख रही हूं. इसको पूरा करके मैं इस बोरी में डाल दूंगी. तू, जो इसको देखेगा, क्या मज़दूर है? अगर है तो मेहरबानी करके जवाब जरूर देना. इस बोरी का सीमेंट कहां काम आ रहा है? मैं जानना चाहती हूं. कुल कितना सीमेंट उससे बना, व सारा का सारा एक ही जगह काम आया या अलग-अलग जगहों पर? तू मजदूर है या राज मिस्त्री? मैं नहीं चाहती कि वह किसी की गैलरी या किसी बड़ी हवेली की दीवार का हिस्सा बने.

पर फिर सोचती हूं, क्या फर्क पड़ता है, जहां जी करे, सीमेंट लगा देना. जहां भी यह सीमेंट लगाया जायेगा, यह अपना काम पूरी ईमानदारी से करेगा, पूरी लगन से करेगा ऐसा मेरा यकीन है. उसका दिल बहुत नरम था, पर वह बहुत तगड़ा और जुर्रत वाला मर्द था. अभी तो बिल्कुल जवान था. पच्चीसवां लगा था. मुझे यह भी जानने का मौका नहीं मिला था कि वह मुझे कितनी मुहब्बत करता था. और अब मैं उसके लिए कफ़न सी रही हूं. कफ़न क्या. . .सीमेंट की एक बोरी सी रही हूं. कब्रिस्तान की बजाय वह भट्टी में झोंका जायेगा पर उससे विदा लेने के लिए मैं उसकी कब्र तक कैसे पहुंच पाऊंगी! क्योंकि मैं कैसे जान सकती हूं कि उसको कहां दफ़नाया जायेगा. पूर्व या पश्चिम, दूर या यहीं . . . इसलिए मैं चाहती हूं कि तू इस चिट्ठी का जवाब जरूर देना. और उसके बदले मैं तुझे उसकी कमीज़ का यह टुकड़ा देती हूं, हां . . ., यही टुकड़ा है, जिसमें यह चिट्ठी लपेटी हुई है. उसके पत्थर का चूरा, उसके शरीर का पसीना, सब कुछ इसी में है. जो कमीज़ पहन कर वह मुझे बाहों में भर लेता था. आह . . .! उसका सिर्फ एक टुकड़ा बचा है. मैं जानती हूं, मैं तुझ पर कितना भार डाल रही हूं. पर मेरी इल्तजा है कि मुझे यह ज़रूर बता देना कि यह सीमेंट किस दिन काम आया . . .किस तरह की जगह पर लगाया गया. . .और उसका ठीक पता क्या है? और साथ ही, अपना पता भी लिख भेजना. और आप भी ध्यान से रहना . . .अपना ख्याल रखना . . .रखेगा न . . .अच्छा, भगवान भला करे."

▣

बच्चों का झुंड एक बार फिर योज़ो के आसपास खड़ा हो गया. एक बार फिर उसने चिट्ठी के अंत में नाम-पता पढ़ा और फिर एक ही घूंट में प्याली खाली कर दी जिसमें उसने अभी-अभी साका शराब भरी थी.

"मैं नशे में धुत्त हो जाऊंगा!" वह पूरे ज़ोर से चीखा.

"अच्छा . . . यह बात है." उसकी बीवी ने कहा, "तो आपके पास नशे के लिए पैसे हैं मगर बच्चों के लिए. . ."

उसकी बात मुंह में ही थी. योज़ो ने अपनी बीवी के बढ़े हुए पेट की तरफ देखा. . .उसको सातवें बच्चे की आमद बड़ी शिद्दत से याद आ गयी. □

अनुवाद : गगन गिल

30 MAR 1979

ग़ज़ल

मुश्किल है कि अब शहर में निकले कोई घर से,
दस्तार पे बात आ गयी होती हुई सर से.

इस बार जो ईंधन के लिए कट के गिरा है,
चिड़ियों को बड़ा प्यार था उस बूढ़े शजर से.

खुद अपने से मिलने का तो याराना था मुझमें,
मैं भीड़ में गुम हो गयी तनहाई के डर से.

निकले हैं तो रस्ते में कहीं शाम भी होगी,
सूरज भी मगर आयेगा उस राह गुज़र से.

▣ परवीन शाकिर

प्रस्तुति : अहद 'प्रकाश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु तुम कैसे किस्सागो

■ मनोहरश्याम जोशी

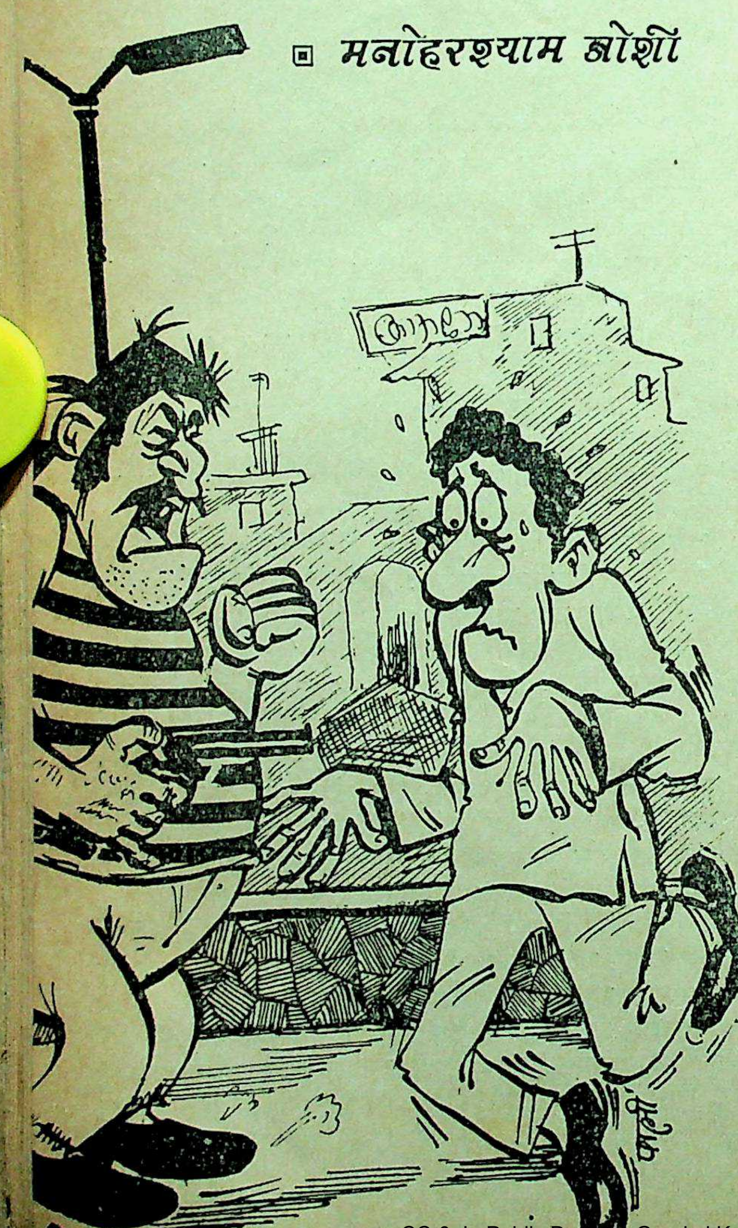

पिछले अंक में

ओरिजिनेलिटी की दरकार ने क्या-क्या पापड़ नहीं बिलवाये. भोगा हुआ यथार्थ हो या फंतासी का फन—सभी कुछ पहले आजमाया जा चुका है. लिहाजा सोचा गया कि पहले प्लॉट सोचा जाये और फिर उसे भोगा जाये. नायिका की तलाश में पहले टकराव हुआ एक राह चलती से. वहां तो घपला हो गया पर ताराबाई जरूर मिल गयी. ताराबाई की रिश्ते में एक भतीजी थी—सावित्री. उसमें नायिका होने की संभावनाएं थीं अब लेखक को पहले तो बनना पड़ेगा सेठ. . .

और अब. . . .

सेठ को अपना संक्षिप्त जीवन-चरित तारा के सामने प्रस्तु करना होगा. एक साथ नहीं, धारावाहिक किस्तों में. और सो इस तरह कि तारा को लगे कि सेठ ने खुद नहीं बताया, उसी सात तालों के बीच से खोलकर निकाल लिया.

सेठ बंबई से बाहर का है. वह आज अमीर है. लेकिन गरी भी उसने कभी देखी है और बहुत घनघोर. गरीबी के दौर में जिस गरीब प्रेमिका से शादी करना चाहता था उसे गुंडे भगा गये. सुना था कि वह बंबई में वेश्या बना दी गयी है. अमीर हो के बाद यह सेठ बंबई आकर उस लड़की को बराबर ढूंढ़ता है. इस चकले में भी वह उसी की खोज में आया था. सावि कुछ-कुछ उसी लड़की जैसी दीखती है सेठ को. अमीर हो जा के बाद बराबर सेठ के मन में यह इच्छा रही है कि अगर लड़की कहीं मिल जाये तो उसके लिए संसार की तमाम सुख सुविधाएं जुटा दे. वह लड़की तो अब नहीं मिलेगी. क्यों न सावित्री में ही उसे ढूंढ़ ले? सेठ अब दौड़-धूप से थक गया सेठ शादी-शुदा है, लेकिन वह शादी पैसे की है, प्यार की न सेठ बंबई में भी अब दफ्तर खोलेगा. यहां अपने लिए फ्लैट लेगा. सेठ कितना अकेला महसूस करेगा अपने को उस फ्लैट सेठ को सावित्री को देखकर बहुत दुख होता है, यह बिच भी उस गरीब लड़की की तरह आखिरकार पांच-पांच रुपए लिए गाहकों के साथ बैठेगी. कहीं बीमारी न हो जाये इसे. बच्चे का यहां क्या होगा?

■

इसी प्रकार यह सेठ तारा से सावित्री के बारे में सारी ज कारी लेता रहेगा. उसे किस रंग की साड़ी पसंद है? धानी. मिठा रस-मलाई. उसका बचपन का नाम? साको, साकम्मा, वह कू छोकरी लोक बहुत हो जाती, छोटा वाला छोकरी का रखती सावित्री, साको, बहुत हुआ एइसा बोल के. बचपन उल्लेखनीय घटनाएं? एक बारी इसका मां और अक्का, बोलते तुम, बड़ा बहन; दोन जनी अक्लक्कि बनाते, क्या बो तुम, चिउड़ा, तो चूल्हा में ये अपना हाथ जला ली. एक रात कू डर गयी, शेर वाला मुंह का आदमी देखा बोल के. कू बहुतीच डरती, अलग नहीं सोती कब्भी. और हां, जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा बहन अपना नवरा के लिए मंगल-गौरी पूजती, चावल का आटा में हल्दी-गुड़ मिलाकर घी का नौ, सोलह एइसा दिया जलाती, तब यह सावित्री बोलती, मेरे कू भी एइसा बनाने का. सावित्री का विवाह? इसका शादी तो मुआ का लड़का से होनी थी. बच्चा था, जभी से दोन जन साथ ही रहता-खेलता खूब, लेकिन वह मादरास गिया नौकरी का वास्ते, उदर कहीं दरिया में डूब गया. लहास भी नहीं मिला. फिर इस कू बैंगलूर साइड का कोई आयेला था, हमारा गाम में, सो परसंद किया. मैं इसका उससे शादी बनाई, पन ओ हरामी निकला. सावित्री का पसंदीदा फिल्मी हीरो? देव आनंद. उसकी दिली तमन्ना? एक अच्छा बैंगलूर का सिल्क का धानी साड़ी होने का और अडिक्की, क्या बोलते तुम, गले में पहनता चांद-सोना का पट्टी जो.

जैसा कि आप देख रहे होंगे, इस तरीके से मुझे अपनी कहानी की नायिका के चरित्र की रूपरेखाएं प्राप्त हो सकती थीं, और हुईं. नक्शे के मुताबिक मुझे तारा की मझौली अक्लमंदी से अपनी आला अक्लमंदी और सावित्री की बेढ़ब कूढ़मगजी के बीच दुभाषिये का काम लेना था. तारा की मझौली अक्लमंदी रूमानियत समझ सकती थी और इशारों से सावित्री को भी समझा सकती थी, लेकिन रूमानियत का वह फरेब उसकी पकड़ में नहीं आ सकता था जो मेरी आला अक्लमंदी रच रही थी. एक अतिरिक्त सुविधा यों थी कि तारा, सावित्री को बेटी-जैसा मानती थी इसलिए उनमें वह खुलापन नहीं था जो सहेलियों में हुआ करता है. इसके चलते तारा, सावित्री को कभी भी यह नहीं बता सकती थी कि मैंने उससे सावित्री के बारे में क्या जानकारी ली? वह केवल इस उत्सुकता की रूमानी बुनियाद को, और सो भी मानवीयता से ओत-प्रोत संरक्षण-भावना के रूप में सावित्री तक प्रेषित करती रह सकती थी.

इस प्रकार नायिका को चकित करने की संभावनाएं नायक के लिए बन सकती थीं, और बनीं. मैं कहता, 'सावित्री, तेरे गांव में तो पानी की बहुत तकलीफ है री?' वह अपनी आंखें फैला कर पूछती, 'तुम मेरे गाम कब्भी गये?' मैं कहता, 'साको, सावित्री, अक्लक्कि बनाते उस दिन हाथ क्यों जलाया?' वह भवों में बल डालकर पूछती, 'कब्भी?' मैं कहता, 'छोटी थी जब, अक्का ने भी मना किया था, चूल्हे के पास मत खेल;' सोच भरी मुस्कान के साथ वह एक सवाल पेश करती, 'तुमको कौन बोली यह बात?'

◘

नक्शे के मुताबिक मैंने एक मित्र की सहायता से कन्नड़ के कुछ जुमले रट डाले, इस लायक बना कि तारा और सावित्री, दोनों से साधारण शिष्टाचार की बातें कभी-कभी कन्नड़ में कर डालूं—'हैंग री?' (कैसी हो), 'बर री' (आओ) 'कुड री' (बैठो), 'होगबर्त्तनी' (जाकर आता हूं). और सावित्री से सहसा हिंदी और बंबइया हिंदी की बातचीत के मध्य कन्नड़ में कोई प्यार भरा जुमला कह सकूं—'निन्ना कंड्रे नांगे तुंबा इष्टा!' (मुझे तुमसे प्यार है), 'निम्म कण्णु बहाड़ा चन्नागिदे' (तुम्हारी आंखें बहुत प्यारी हैं), 'नीनू रम्भेयिते इद्दिया (तुम रम्भा जैसी हो) वगैरह. नायिका की बुनियादी भाषा में बुनियादी प्यार की बातें प्रीतिकर विस्मय जगा सकती थीं और जगाकर रहीं. 'तुम को कौन बोली यह बात?' वाला अचरज 'तुम क्या हमेरे तरफ का?' के सवाल का रूप लेने लगा.

धारवाड़ की संस्कृति के बारे में भी मैंने जानकारी बटोरी—नववर्ष का त्योहार उगादि, दशहरे के दो विशिष्ट पक्ष (बोंबे हव्वा—गुड़ियों का त्योहार और गजे पूजा—नर्तकी वेश्या का पहली बार मंच पर उतारा जाना), स्वर्ण-गौरी पूजन (हरितालिका). दीवाली में भाउ-बीज (जंवाई भोज—जंवाई का आना, उपहार देना और लेना) और प्रणय के कुछ खटके—'हू मुडिस उदु' (बालों में फूल खोंसना), 'जड़े एलिया उदु' (प्यार से चोटी खींचना), ताली कट्टु उदु (मंगलसूत्र पहनाना) वगैरह. इन मुद्दों का उपयोग भावुकता भड़काने के लिए किया जा सकता था, और आपके आशीर्वाद से, किया भी गया.

मिसाल के लिए, स्वर्ण-गौरी पूजन को ही ले लीजिए. मैं सावित्री से अनुरोध कर सकता था कि मेरी खातिर स्वर्ण-गौरी पूजे. ऐसा संकेत दे सकता था कि इधर मेरा पित्त-वित्त-चित्त सभी थोड़ा गड़बड़ चल रहा है और वह अगर पार्वती से प्रार्थना करेगी तो मुझे यानी उसके 'उसको' सुख-शांति-समृद्धि मिलेगी. इस प्रकार संरक्षण-भावना के व्यापार को भी इकतरफा होने से बचाया जा सकता था.

और भी: मैं दीवाली के दिन उपहार लेकर पहुंच सकता था और तारा को बहुत श्रद्धा से अत्ते (सास) का संबोधन देते हुए 'भाउ-बीज' की मांग कर सकता था. तारा की आंखों में जो नमी छलकती और उसके चेहरे पर आशीर्वचन से आंकी गयी जो मुस्कान खेलती वह निश्चय ही सावित्री के मन को छूने में हजारों प्रेम-गीतों से अधिक प्रभावप्रद सिद्ध होती.

ये तमाम लटके, न सिर्फ सोचे गये, बल्कि, आपकी कृपा से, सफलतापूर्वक आजमाये भी गये.

उसके एक अदद सुखद-दुखद पुत्र भीमू को भी मैं नहीं भूला. उसके पिता की भूमिका अपनाकर मैं सावित्री के पति-परमेश्वर की भूमिका सहज ही पा जाऊंगा—इस तथ्य को मैंने पहचाना. अपने बजट की दृष्टि से भी इस बालक के पिता की भूमिका मुझ सावित्री के प्रेमी की भूमिका से अधिक आकर्षक मालूम हुई. साड़ी-जेवर जैसा कोई उपहार देकर सावित्री का मन जीतना, कहानी को बजट-बाहर कर सकता था. बच्चे के लिए खिलौना लाना सस्ता नुस्खा था.

यह भी स्पष्ट था कि तारा को—जो सावित्री का हित चाहती है लेकिन उस हित की खातिर अपने हितकारी सेठ को नहीं खोना चाहती—मुझे सह-षडयंत्रकारी की भूमिका देनी होगी. उसे आश्वस्त करना होगा कि हम दोनों मिलकर सावित्री को तारा के सेठ से बचाने और सुखद भविष्य दिलाने का षड्यंत्र रच रहे हैं.

गोया नक्शा पूरा सोचा हुआ था. भूल-चूक की कोई गुंजाइश न थी, न हुई. मानव का मस्तिष्क संगणक से भी करोड़ों गुना अधिक पेचीदा है, यह बात अपनी जगह पर ठीक हो सकती है, मगर चंद चिंदियों को बतौर जीवन-सार सहेज कर रखने वाले पागल, मुट्ठी भर शब्दों में सृष्टि का सत्य कैद करने का हौसला रखने वाले कवि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महज दस आदेशों से जमाने को अपने पीछे हांक ले जाने वाले मसीहा, महज चार कीलों से बड़े-बड़े मसीहाओं से चीं बुलवाने का विश्वास रखने वाले यंत्रणादाता, सभी जानते हैं कि संगणक की ही तरह यह पेचीदा मानव-मानस भी चलता गिने-चुने खटकों से है.

मेहरबान, आपने इस नाचीज़ को जो क्लासिकी आधुनिक चेतना बख्शी है, उसके सहारे वह पहचान सका है कि गौर-तलब, राग की पेचीदगी नहीं, साज की सादगी है. और सावित्री—वह तो खपच्ची और कागज़-मढ़े दीये पर खींचे हुए एक तार की सारंगी भर थी. चुनौती कुछ थी तो यही कि इस देहाती साज से शुद्ध शास्त्रीय धुन निकालकर दिखायी जाये. एक तकनीकी मसला.

▣

कहानी उसी तरह आगे बढ़ी जिस तरह मैंने उसे सोच रखा था. आरंभ में मैं एक सिर-फिरे सेठ के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, जो दिन के टैम आ जाता है. चा-पानी पिलाता है. चकले की औरतों से अलसाये-से अंदाज़ में अनुभवी-सी छेड़छाड़ करता है. चकला-मालकिन तारा से एकांत में बतियाता है. सावित्री के बच्चे को खिलाता है. और सावित्री को जो देखता है तो अपलक देखता रहता है. कूढ़मगज सावित्री कहती है, 'एइसा कायकू देखता है?' कूढ़मगज सावित्री कभी-कभी पूछती है, 'बैठने का है क्या?' लेकिन नहीं, इस सेठ कू बैठने का नहीं मांगता. बैठने का क्या, इस सेठ कू तो एक मुत्तू (चुंबन) तक नहीं मंगता. और यह सेठ पैसा पूरा देकर जाता, बच्चा के लिए जो चीज-बीज लाता सो अलग. चा-पानी पिलाता सो अलग. यह सेठ पागल है क्या री? पागल कइसा हुआ? इसकू एक लड़की से मौवत था, वह लड़की किदर गुम गयी, अभी सावित्री में इसकू वही लड़की दिखती एइसा.

फिर दूसरा चरण. सेठ अब अन्य चकलेवालियों से हंसता-बोलता नहीं. सावित्री से ही कुछ-कुछ कहता, धीमी आवाज़ में. नहीं वइसा कुछ नहीं. दरवाजा का पाट खुला रखता. सेठ सावित्री कू रसमलाई खिलायी. सेठ सावित्री कू देवआनंद का दस्तखत किएला फोटो लाकर दिया. सावित्री कू बैंगलूर सिल्क का धानी साड़ी देगा, ऐसा बोला सेठ, अभी हाफवायल का लाया. मैं देखी, सेठ सावित्री का चोटी खींचता था री, उसको चोटी में फूल पन लगाया. मैं सुनी, सेठ उसकू हमेरे साइड का बात बोलता था री—'निन्ना यावदलु प्रेमिस तीनी मणजै काय? मणजै', मेरा तुमसे, भौत जास्ती मौबत. जोरदार ठहाके और फिर एक गंभीर खामोशी जो पूछती, 'अपन को क्यों नहीं मिला रे ऐसा सेठ, जो प्यार से पास बिठाता है, मगर 'बैठता' नहीं.' नपुंसकता की हद तक पहुंचे हुए अनुराग की दार्शनिक विवेचना वे भले ही न कर सकती हों, उसके महत्व को पहचान सकती थीं और पहचानवा सकती थीं. अब सावित्री भी 'बैठने' की बात न कहती और न ही यह पूछती कि 'ऐसा काय कू देखता?' अब उसका सवाल यही होता, 'तुम को कौन बोली यह बात? और 'क्या तुम हमेरे तरफ का?' सेठ को पैला जिससे मौवत हुएला वह साइत अपना धारवाड़-साइड का कोई छोकरी. एइसा तारा बोली मेरे कू. सेठ को अब्भी ओ मिलेगी नहीं जब्भी सावित्रीच को ही ओ छोकरी मा… लेगा.

तीसरे चरण में सेठ लंबे-लंबे अर्से तक गायब रहने लगा. इ… उसकी वह परेशानी प्रमाणित हुई जो सावित्री से प्यार … ढारस की मांग कर रही थी. और इसके चलते सेठ के पैसों … बचत भी हुई. सेठ अब तारा कू 'अत्ते' कहता है—मणजै सा… सेठ सावित्री को सिंदूर का डिब्बी लाकर दिया. सोने का मं… सूत्र देगा, बोल के गिया. सेठ इदर अपना धंधा में मौतीच फंसे… उस कू निपटा कर इदर मुंबईच में रहेगा बोला. सेठ अब्भी … नहीं पन सावित्री को अलग करेगा एइसा मालूम होती मुझको. … में फिलैट लेता बोले. इसी तीसरे चरण में सेठ का अंदाज़ … कुछ ऐसा रहा कि सावित्री 'तुम को कौन बोली यह बात?', … क्या हमेरे तरफ का?' पूछना भी भूल गयी. सेठ को सब प… सेठ अपने ही घर का—ऐसा आदर-भाव उसके चेहरे पर … डाल गया. अब वह मेरी रखैल या पत्नी की भूमिका तक … चुकी थी. लेकिन मेहरबान, मुझे अभीष्ट था उसे प्रेमिका … भूमिका में उतारना.

इसीलिए चौथा और अंतिम चरण. वेश्या वाले हथि… कूढ़मगज सावित्री के पास अधिक थे नहीं और जितने थे … तीसरे चरण के समाप्त होते वह उन्हें डाल चुकी थी. इस निह… साकम्मा को अब इस सेठ ने लेखक के सोचे हुए आखिरी हथियार … कोंचना शुरू किया. या तो वह आता ही नहीं. आता तो पलंग … चुपचाप लेटा हुआ छत को ताकता रहता. और अगर कभी बोल… तो बात न जाने कैसे बुआ के उस लड़के तक पहुंच जाती … सावित्री से शादी होने से ऐन पहले मर गया था. मैं तारा से … लड़के के बारे में विशेष कुछ जान नहीं सका था लेकिन कल… भी तो कोई चीज़ होती है कद्रदान. मेरे सवाल अन्य पुरुष … होते—'तुझे उसने एक फैंसी रूमाल दिया था, सो क्या हुआ … लेकिन सहसा अप्रत्याशित रूप से उनमें प्रथम पुरुष आ घुस… 'दिया था न वहां देवल के सामने अश्वत्थ के पेड़ के नीचे … मुझे सब याद है, तू कैसे भूल गयी री? तू रो रही थी न … वह शहर जा रहा है और उसने रूमाल निकाल कर तेरे … पोंछे और फिर बोला, इसे रख ले. मेरा वह रूमाल क्या हुआ…

अन्य से प्रथम फिर प्रथम से अन्य पुरुष में जाने वाली … बातचीत की रीत सावित्री को हिला देती. मेरे गढ़े हुए … किस्से कई बार थोड़े-बहुत सही निकलते, सावित्री को स्वयं … होते, इसलिए जो याद नहीं होते वे भी धीरे-धीरे उसे विश्वस… मालूम होने लगे. किसी भी किस्से पर अब उसने 'एइसा कब … हुआ? एइसा तो हुआ नहीं?' कहना छोड़ दिया. उसके चे… से वह मुस्कराहट भी गायब होने लगी जो आत्मरक्षा की अं… कड़ी थी.

'उसका बात कायकू बोलता है? ओ तो खत्म हो … बिचारा.' सावित्री के स्वर में अब एक भयभीत विनती … और यह प्रयोगधर्मी लेखक कहता, 'किसने कहा कि वह मर … किसने देखी उसकी लाश?'

फिर एक दिन जब मेरा गढ़ा हुआ एक किस्सा आंशिक … सही सिद्ध हुआ—'मल्लिगे का झाड़ था न वहां तू बैठी फूल … रही थी, उसने आकर पीछे से तेरी कमर पर हाथों का फंदा …

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

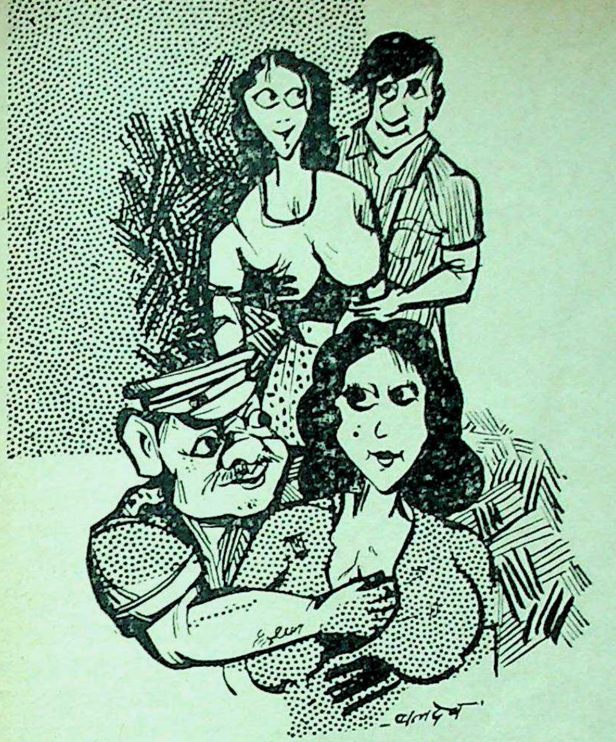

दिया था. भूल गयी री, मैंने कहा था, जैसा मेरा हाथ कसा है कमर पर वैसी ही सोने की करघनी कसवा दूंगा—चिद डाबू?' तब उसने टोक कर कहा, 'मैं क्यों भूलूंगी, तू भूल गया है, तूने तो हाथ . . . .' और एक लजीली मुस्कान के साथ उसने जुमला अधूरा छोड़ दिया. फिर लज्जा की जगह आतंक ने ली और वह बुदबुदायी—'नीन यारू?' (तू कौन है). उत्तर में मैं उसकी आंखों को अपनी दृष्टि से बांधे-बांधे हुए बस मुस्कराता चला गया.

यह हुई न बात—नायिका भी अन्य पुरुष और प्रथम पुरुष में गड़बड़ाने लगी. इस गड़बड़ से आतंकित होने लगी. अपन आधुनिक लोग जानते हैं कि जिसे प्यार कहा जाता है वह अस्तित्व के इसी आतंक से पैदा होता है. जिसके बारे में यह सवाल पेश हो कि 'तू कौन है?' उसके बारे में ही यह सवाल उठने की गुंजाइश बनती है कि 'तू कौन है मेरा?'

मेरा लेखकीय अहंकार का अमीन सयानी चहक उठा—तो भाइयो और बहनों, अब हम आन पहुंचे हैं अपने आखिरी और अहम सीक्वेंस पर, जी हां——सिसकते हुए वह समर्पण करती है. कैमरा उसकी बिचारी-बिछुड़ी-बच्ची आंखों को और नायक के संरक्षक-वक्ष पर फड़फड़ाती गदोलियों को इंगित करता है. नायक हाथ बढ़ा कर उसकी चिबुक ऊपर उठाता है—आंखों ही आंखों में आश्वासन और कृतज्ञता का आदान-प्रदान होता है और हम 'शाट को यहीं फ्रीज' कर देते हैं. ग्रें ऽऽ ड क्लाइ ऽऽ मेक्स!

इस क्लाइमेक्स की ओर बढ़ने के लिए मैंने भ्रांति और आतंक की मिकदार रोज़-ब-रोज़ बढ़ायी. उसी निर्मम धैर्य से सावित्री से मृत प्रेमी के बारे में बातें कीं जिससे खुफिया पुलिस वाले स्वीकारोक्तियां लिखवाते हैं. फिर पहली बार मैं रात के समय चकले में गया. तारा को मैंने एकांत में समझाया कि जूहू में वह फ्लैट कल तक तैयार हो जायेगा. मुझे अगर बाहर नहीं जाना हुआ तो शाम तक आकर सावित्री को वहां बसा दूंगा. फ्लैट में फर्नीचर, बिस्तर, नये वस्त्र, जेवर, प्रसाधन-सामग्री, बर्त्तन-भांडे सब मिलेंगे. यहां से कुछ ले जाने की जरूरत नहीं है. चाहे तो वे चीजें ले जा सकती हैं जो मैंने इस बीच उसे दी हैं. अगर मैं खुद न आ सका तो मेरा एक विश्वस्त कारिंदा गहने का बकसा और वस्त्रों का ट्रंक लेकर आयेगा. सावित्री को सजा-धजा कर भेजे. जब तक मैं लौट न आऊं सावित्री और भीमू के साथ तारा भी उसी फ्लैट में रहे. फिर मैंने तारा को चालीस प्रतिशत छूटवाली सेल में खरीदी हुई, इसलिए थोड़ी मैली, केला-सिल्क की एक धानी साड़ी दी और कुछ सस्ते पुराने नकली जेवर. बताया कि ये कभी मैंने उस गरीब प्रेमिका के लिए खरीदे थे जो मेरी न हो सकी. भावुक इच्छा व्यक्त की कि आज रात सावित्री इन्हें ही पहने.

▣

रेडी फॉर टेक—नायक ने केला-सिल्क की साड़ी और नकली जेवर पहनी नायिका को बिस्तर पर बैठाया. उसके बालों में एक फूल खोंसा. उस फूल को सूंघते-सूंघते वह उसकी ग्रीवा चूमने लगा. उसने बत्ती बुझा दी. नायिका को लिटा दिया. नायिका ने उसकी ओर देखा. उसकी आंखों में वह परंपरागत आमंत्रण खोजा. नायक उस पर झुका. शायद आज सब कुछ सामान्य हो. लेकिन झुक कर नायक ठिठका. फिर सहसा उठा और नपी-तुली चहलकदमी करने लगा अंधेरे में. वह कुछ-कुछ कहने लगा, कभी अन्य पुरुष में, कभी प्रथम पुरुष में. वह उस प्रेमी की बात कर रहा था जो मर गया है. वह उस प्रेम की बात कर रहा था जो मरता नहीं.

नायिका उठ कर बैठ गयी. भयभीत उसने पूछा, 'तू कौन है रे?' न।यक उसके नज़दीक आया. नायक ने शेर के मुंह वाला कागज़ी डैराना पहन रखा है. 'अय्यो-अम्मा!' नायिका चीखी. नायक ने अपनी अंगुलियों से उसकी चीख दबायी. अंगुलियों पर नकली बाघ-नख झमके. नायक ने बाघ-नख वाली तर्जनी को अपने होंठों पर रखते हुए मंद स्वर में कहा, 'ए कत्ते बाय मुच्चु' (ए गधी, मुंह बंद रख). और वह फिर अंधेरे में चहलकदमी करने लगा.

कैमरा अब नायिका की भयभीत आंखों को थामे हुए है. साउंड ट्रैक पर नायक के नपे-तुले कदमों और नायिका की बदहवास सांसों की आवाज़.

नायक बोला, "तुझसे कितनी बार उसने कहा जब तक मैं साथ हूं, डरने की कोई बात नहीं. मसान वाली पगडंडी से उस शाम मेरे साथ गयी तो कोई डर लगा बोल? और मैंने तुझे बताया था कि वह शेर के मुंह वाला आदमी-फादमी कुछ नहीं होता. गंदे सपने देखती है तू. मैंने तुझसे कहा था न कि अच्छे सपने देखा कर साको." नायक नायिका के पास पहुंचा. डरौना और बाघ-नख अब नहीं हैं. नायिका ने रोते-कांपते कहा, 'वह तो मर गया था, वह तो मर गया था.'

नायक ने अपनी जेब से एक पुराना-सा रूमाल निकाला. उसके आंसू पोंछे और कहा, 'मैं मरा नहीं. देखती नहीं, यह रूमाल जिससे उस दिन देवल के पास तेरे आंसू पोंछे थे? तुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था. फिर देता हूं. इसे अब मत खोना और मैं कल न आऊं, परसों न आऊं, बरसों-बरसों न आऊं और तुझसे कोई कहे कि वह मर गया तो कभी सच मत मानना री. वह मरता नहीं, वह जो तुझसे प्यार करता है, साकम्मा.'

'होग वर्त्तनी,'—नायक ने बत्ती जलायी और विदा मांगी. अब सिसकते हुए समर्पण. लेकिन नहीं, वह पहले काठ मारी-सी बैठी रही और फिर उसने दो हाथ पसारते हुए कहा, "होग बेडा" (मत जाओ). क्लाइमेक्स के लिए यह भी ठीक था, बल्कि बेहतर. थोड़े टाप एंगल से देखे गये, दो पसरे हुए हाथ और उनके मध्य चितातुर चिरौरी से भरा चेहरा और अनुगूंज. कक्ष में भटकता एक जुमला, 'मत जाओ.' नायक के कदम दरवाज़े की ओर, घूमा हुआ चेहरा नायिका की ओर. सादा, प्रभावप्रद, दोचित्तता, आधुनिक. इसे मैंने पटकथा में परवरदिगार के किये गये सुधार के रूप में सहर्ष ग्रहण किया.

▣

वापस लौटते हुए मैं सोच रहा था कि इस कहानी को लिखते समय 'रोमां नूवेल' के अनुयायियों की तरह पटकथा की शैली अपनायी जा सकती है. अलबत्ता 'सच्चाई जो है सो सतह पर है' वाले उनके नारे से पूरा परहेज बरतते हुए. यहां 'रोमां नूवेल' की शुष्कता अपेक्षित न होगी, यहां ममता और निर्ममता के बीच का तनाव अभीष्ट होगा. बहरहाल, वह तो शिल्प का सवाल भर था.

ऐन इसी वक्त परवरदिगार छींके—मेरे पीछे आते हुए एक नर के भेस में. मैंने पलट कर देखा तो मुझे ख्याल आया कि यही दादा टाइप शख़्स उस समय भी मेरे पीछे था जब मैं बदनाम वस्ती से बाहर आ रहा था. अपनी दिशा बदल कर मैं सहसा सड़क के पार चला गया. वह भी पीछे आया. मैंने चर्नी रोड ओवर ब्रिज से पटरी के पार चले जाने का फैसला किया. वह तेज़ी से मेरे पीछे आया और पुल के ऊपर उसने मेरा कालर पकड़ लिया.

आगे के दुखद और हिंसक ब्यौरे में न जाकर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसने तारा के सेठ द्वारा पाले हुए गुंडे के रूप में अपना परिचय दिया और अपने मालिक की ओर से मेरा यथोचित अभिनंदन किया. लेखक की आला अक्ल रिरियाने लगी. पुल के नीचे लोकल गाड़ियां घड़घड़ा रही थीं. ओवर ब्रिज पर लोग आ-जा रहे थे, मार-पीट के इस रोजमर्रा छाप नाटक को नजरअंदाज करते हुए. ओवर ब्रिज पर लगे रोशन विज्ञापन बुझ-चमक रहे थे. सब कुछ निरा हॉलीवुड, शुद्ध हिचकॉक. मगर यह लेखक पिट-पिटा कर फिर उठने वाला मर्दाना हीरो हरगिज नहीं था जो कटे हुए होंठ से निकले खून को नमकीनी चटखारे लेकर चखता है और बूट की ठोकरें खाते हुए भी आंखें पिस्तौल पर गढ़ाए रहता है कि किस दांव से उसे झपट लूं. मेहरबान, हिंसा के पांव बूट समेत पकड़ लेने के अलावा कोई रास्ता न था. लेकिन पांव पकड़ने पर भी वह नहीं पसीजा. उसका कहना था कि उस सेठ ने तो इस सेठ को खत्म करने के पैसे दिये हैं, अगर अब यह सेठ कुछ दे-दिलाये और आइंदा उस गली में अपना थोबड़ा न दिखाने की कसम खाये तो छोड़ देने की बात सोची जा सकती है.

तो इस सेठ ने रो-रो कर कहा कि मैं सेठ नहीं. मैंने तो एक किस्सा गढ़ा था. दादा ने चरणों पर बिछे इस बिसूरते बुद्धिजीवी को कालर से पकड़ कर उठाया, सीधा खड़ा किया, झा... मारा और फिर उसकी जेबें तलाशीं. एक अठन्नी, एक ... शिनाख़्ती कार्ड जो मय फोटो घोषित कर रहा था कि यह चौ... आंग्लभाषा का राष्ट्र-भाषा में अनुवाद करने वाले एक सरका... पत्रकार का है, एक थर्ड क्लास का लोकल-रेल पास, दो मु... तुड़ी सिगरेटें और बस. उसने शिनाख़्ती कार्ड देखा, फिर ... देखा और फिर अठन्नी को चित्तपट करने के अंदाज़ में उछा... हुए हंसा, "तो तुम नकली सेठ हो. तुमसे मिलकर बहुत खुशी ... मैं नकली दादा हूं. यह जिसे तमंचा समझ रहे हो बच्चों ... खिलौना है."

मैं और कुछ नहीं सुनना चाहता था लेकिन वह सुनाये ... नहीं माना. वह रंगमंच और फिल्म का एक विफल अभिनेता ... कड़की के इस आलम में वह कोई न कोई भूमिका ओढ़कर ... के इस खुले रंगमंच में निकल आता है, सहानुभूति या आतंक ... अपने तईं कुछ पैदा करने के लिए. वही चौपाटी में भूखों म... का अभिनय करता है. वही के. ई. एम. अस्पताल के सा... सीने पर तमाम तरह के ट्यूब-टेप से चिपकाए हुए बाहरगाम ... लाइलाज मरीज के रूप में मिलता है जिसे घर पहुंचकर चैन ... मरने के लिए पैसा चाहिए. वही है जिसे चलती सड़क के बी... मिर्गी का या न जाने किसका दौरा पड़ जाता है और लोग उस... मदद को आते हैं. वही है जो सार्वजनिक मूत्रालयों में पहले स... लैंगिकों को आकर्षित करता है और फिर पुलिस अफसर बनक... पैसे वसूलता है.

और हां, वही है जो अपने अपेक्षाकृत अच्छे जमाने में का... सावित्री के साथ 'बैठता' था. सावित्री और नये मजनू सेठ ... किस्सा उसे अभी मुरली से मालूम हुआ और एक प्रेरित क्षण ... उसने अपनी आज की दिहाड़ी, देर से सही, खड़ी करने ... यह योजना बना डाली.

▣

मेहरबान, बुजुर्गों ने कहा है कि अगर अखाद्य-विशेष खा... ही हो तो हाथी का खाओ. आधुनिक साहित्य में इसका रूपांत... अपन लोगों ने कुछ इस तरह कर छोड़ा है कि अखाद्य-विशेष खा... ही है तो अल्बेयर कामू का खाओ. और यह परवरदिगार था ... मुझे ओ. हेनरी और एच. एच. मनरो 'साकी' जैसे टुच्चे किस्सा... गोओं का खाने को मजबूर किया चाहता था.

यह सही है कि थोड़ा सांस और आत्म-सम्मान लौटने प... मैंने इस संभावना को भी जांचा-परखा कि कहानी अब यों लि... जाये कि कैसे एक लेखक ने गढ़े हुए किस्से से पतुरिया के मानस ... चूर-चूर किया और कैसे उस गढ़े हुए किस्से से उपजे एक अ... गढ़े हुए किस्से ने उसके मानस को चूर-चूर किया. गोया सभी अ... ढंग से ठगे गये. लेकिन उस हालत में संरचना ज़रूरत से ज़्या... सलीकेदार होती और नीयत ज़रूरत से ज़्यादा पारदर्शी. ... आधुनिक-आधुनिकों को उस हाथ की सफाई से उबकाई आ... है अब.

● **53 नेशनल पार्क, नयी दिल्ली-24.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज की संपूर्ण स्थिति और लेखन

कहानी और भाषा का इस्तेमाल

▣ मृणाल पांडे

अगर हम शब्दों को भाषा में प्रयुक्त संप्रेषण चिह्नों के रूप में देखें तो उनके दो रुख सामने आते हैं, पहला उनकी शुद्ध भौतिकी उपस्थिति यानी उनका **बाह्य स्वरूप, उनकी ध्वन्यात्मकता** और दूसरा उनकी **अर्थात्मकता.**

हमारे यहां प्रायः लोग यह मानकर चलते रहे हैं कि भाषा का पहला रुख सिर्फ कवियों या बहुत करके वैयाकरणों से ही तअल्लुक रखता है और उसका मात्र दूसरा यानी अर्थात्मक रूप गद्यकारों के लिए प्रयोजनीय है. यह एक नितांत भ्रामक धारणा है. इसी धारणा में बंधे हमारे ज्यादातर मान्य आलोचकगण कहानियों व उपन्यासों में सबसे पहले (प्रायः केवल) नैतिक सूक्तियां व सामाजिक पक्षधरता के सूत्र तलाशते हैं. यह नज़रिया किसी भी अच्छी कहानी या उपन्यास के साथ घोर अन्याय है, क्योंकि यह मानकर चलता है कि कोई भी कहानी या उपन्यास एक कविता की तरह अपने में पूर्ण एक कलात्मक प्रयास नहीं हो सकता, उसका मानव-निर्मित वादों व चालू स्थापनाओं के पक्ष में 'कमिटेड' होना उसके 'भलेपन' की बुनियादी शर्त है! इस नज़रिये के पनपते अचरज नहीं कि हिंदी साहित्य में समाज सुधारकों और राजनयिक पक्षधरता के उत्कट हामियों की संख्या दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ रही है.

इसी भ्रांतिपूर्ण अवधारणा की एक उपशाखा कहानी में भाषा की 'स्वाभाविकता' पर भी अनावश्यक बल देती रहती है. स्वाभाविकता से मतलब क्या है? कि यह वही भाषा हो जो 'आम आदमी' प्रयोग करता है? या जो कि सुनते ही लगे कि हां यह बिलकुल हू-ब-हू वैसी ही है जैसी कि हम घर में सुनते आये हैं? तो साहब कहानी न हुई सड़क पर घूमता माइक्रोफोन हो गयी!! हर अच्छा लेखक तहे-दिल से स्वीकार करता है कि जब वह अनुभव विशेष या स्मृति विशेष के बारे में लिखता है तो भाषा को कहानी के अपने अंदरूनी व कलात्मक अनुशासन के अनुरूप नियोजित करके ही उसे अच्छी प्रकार लिख पाता है. अतः हर अच्छी कहानी की भाषा एक बहुत यत्न और संवेदनशीलता से बनायी हुई, संयोजित की हुई चीज होती है और जो इसके बावजूद इसमें एक गज़ब की रवानगी आ पाती है, वह लेखक के जीनियस की देन है. अच्छी कहानी या उपन्यास को सराहते वक्त उसके भाषायी गठन की इस प्रच्छन्न ताकत व शब्दों के कलात्मक अनुशासन को हम कतई नज़र-अंदाज नहीं कर सकते. हर अच्छी कहानी इसीलिए अलसा-अलसा कर पढ़ने की हल्की-फुल्की आदत को एक गंभीर चैलेंज देती है—उसका पूरा रस आप तभी ले पाते हैं जब आप उसे अपेक्षित ध्यान और जागरूकता से पढ़ते हैं.

हमारे यहां एक त्रासदी यह रही है कि स्कूलों-कॉलेजों में साहित्य पढ़ाते समय भाषा के व्याकरण-सम्मत और मात्र शब्दकोषी रूपों पर ही बल दिया जाता है, साहित्य में भाषायी प्रयोगों की संपूर्णता पर नहीं! इसी से हमारा सामान्य पाठक एक तरह की मानसिक संकीर्णता का शिकार होता चला जाता है—कम-से-कम गद्य को पढ़ाते समय. बच्चे काफी हद तक इस हठधर्मिता से मुक्त होते हैं, इसी से अक्सर उनकी कही बातें बात की ऐन नस पकड़ती हैं. भाषा के प्रति एक कौतुक भरा व निडर खिलवाड़ का रुख शब्दों की ध्वन्यात्मकता और भाषा की रिद्म के प्रति एक सचेत लगाव जो खेल-खेल ही में प्रदर्शित करते हैं, एक वयस्क के लिए भी साहित्य का आस्वादन लेने के लिए बहुत जरूरी है. जब हम जाड़े की अलसायी दुपहर में धूप में लंबी तान कर पड़ होते हैं तो हम क्या महसूस करते हैं, एक पुलक भरी ऐंद्रिक सुखानुभूति? या कि सूर्य की 'क्ष' किरणों से हड्डियों में विटामिन 'ए' और 'डी' का भरा जाना? (हालांकि वह भी होता है) हमारा बेचारा शोधकर्ता साहित्य पढ़ते वक्त इतने से ऐंद्रिक सुखबोध से भी रीता है.

हर कहानी, हर कला-रचना का केंद्र अंततः मनुष्य है. पर उसकी महानता इसी में है कि मनुष्य से शुरू होकर वह हमें एक मनुष्येत्तर विराटता के बोध से जोड़ती है, जो समय, काल की गुंजलकों और मानवनिर्मित संकीर्ण नैतिक मानदंडों से परे एक विराट् आदि स्रोत है हर चीज का. कोई भी अच्छा लेखक वस्तुओं की, मानवीय संबंधों की गोचर सचाई को नकारता नहीं, पर वह यह कभी मान कर नहीं चलेगा कि वस्तुओं की गोचर उपस्थिति ही संपूर्ण सत्य है. अगर वह वस्तुओं के दृश्य रूप के परे जाने की सामर्थ्य नहीं रखता तो फिर वह स्फुट रिपोर्ताज भर दे पायेगा, जो 'सत्य-कथाओं' की तरह रोचक व पठनीय भले ही हों पर गंभीर कलात्मकता की सरहदों तक नहीं पहुंचते. अपनी दिमागी गुंजलकों के खुलने की कष्ट-साध्य प्रक्रिया से बचने को लेखक से सिर्फ इन्हीं थोथे दैनंदिन सचाइयों भरे सपाट घरेलू ब्योरों की मांग करना और उसके द्वारा स्थिति के हू-ब-हू (किसके? किसके? किसके?) चित्रण न किये जाने पर 'बूर्जुवा इयीस्ट' कहे जाने की धमकी कोई भी सत्यप्रिय, स्वाभिमानी कहानी लेखक या लेखिका के गले के नीचे नहीं उतरेगी. और यही बात है जो साहित्य के भविष्य के प्रति जागरूक साहित्य प्रेमियों को हर बार आश्वस्त करती है ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7iffi

सातवां अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह : एक साहित्यिक दृष्टि से

□ कुंवर नारायण

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि, कहानीकार श्री कुंवर नारायण यह समारोह देखने के लिए विशेष रूप से दिल्ली आये. हमारे निवेदन पर उन्होंने 'सारिका' के लिए इस समारोह का एक लेखक की दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत किया है जो इन फिल्मों के कुछ अछूते पक्षों को भी उजागर करता है. साथ ही समारोह की कुछ झांकियां भी यहां प्रस्तुत की जा रही हैं.

↑ इस समारोह में स्वर्णमयूर प्राप्त क[रने] वाली फिल्म 'हंगेरियन्स' का [एक] तनावपूर्ण दृश्य

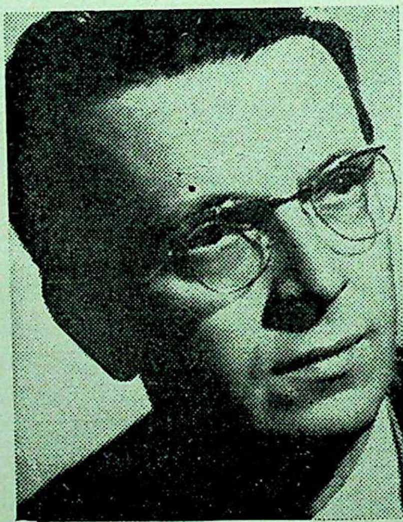

←'हंगेरियन्स' के निर्देशक श्री ज़ोल[्तान] फ़ाबरी

सातवें अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में (दिल्ली : 3-17 जनवरी 1979) जो फिल्में दिखायी गयीं, उन पर कुछ बातचीत 'कहानी' तथा अन्य साहित्यिक विधाओं को केंद्र में रखकर यहां करना चाहूंगा. इसीलिए ज़्यादा से ज़्यादा फिल्मों पर कुछ न कुछ कहने के बजाय, कुछ खास फिल्मों पर कुछ ज़्यादा कहना बेहतर होगा. बात को इस तरह शुरू किया जा सकता है कि अधिकांश फिल्मों का विषय कहानी कहना नहीं था—उन अर्थों में कहानी नहीं था जिन अर्थों में कविता, नाटक, ललित निबंध, यात्रा विवरण, इतिहास, मनोविज्ञान, नृशास्त्र, विचार-लेख आदि मुख्यतः कहानी नहीं होते यद्यपि उन सभी में कहानी के कुछ गुण या तत्त्व मौजूद हो सकते हैं. अधिकांश अच्छी फिल्में सब-

से पहले इस मिथ को तोड़ती लगती थी[ं कि] बिना मज़बूत प्लाट के एक सशक्त [और] महत्वपूर्ण फिल्म नहीं बन सकती. थ[ोड़ी] देर के लिए यदि हम फिल्म माध्यम [को] एक साहित्यिक 'विधा' की तरह सोच[ें तो] हम महसूस करेंगे कि नयी कहानी की [ही] तरह शायद नयी फिल्में भी सुगठित [प्लाट] के अधीन न रह कर अपनी संभावनाओं [का] विस्तार साहित्य की अन्य विधाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

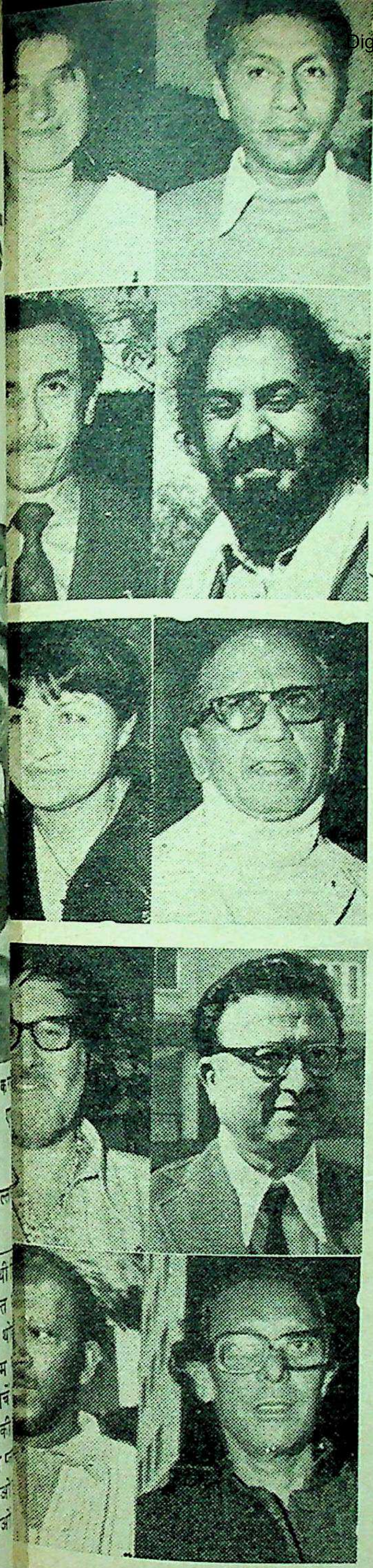

नज़दीक जाकर करती हैं. शायद इसीलिए अगाथा क्रिस्टी से लिये गये कथानक पर आधारित **'डेथ ऑन द नाइल'** जैसी फिल्मों की अपेक्षा या तो ओल्मी की **'द ट्री ऑव वुडेन क्लाग्स'** और फ़ाबरी की **'हंगेरियन्स'** जैसी फिल्मों का बिल्कुल यथार्थवादी स्तर का अनगढ़ शिल्प हमारी आधुनिक संवेदना से अधिक नज़दीक पड़ता है, या फिर उस प्रकार की फिल्में हैं जिन्हें हम विचारशील, मनोवैज्ञानिक, काव्यात्मक या फंतासी जैसे विषयों की कोटि में रखेंगे—यानी फिल्में जो जीवन को केवल एक खास तरह देखती और सुनती ही नहीं बल्कि सोचती और रचती भी हैं : मेरा मतलब उन फिल्मों से है जो केवल दिलचस्प चित्रों का संग्रह मात्र नहीं, चित्रों की ऐसी संरचना प्रस्तुत करती हैं जिसे हम भाषा की तरह पढ़ और विचारों की तरह सोच सकते हैं. तार्कोव्स्की की **'सोलारिस'** और **'आंद्रे रुबलेव'**, यान्सी की **'स्पाइरल'** मिकलोश यांचो की **'आंगुस देई'**, स्कोलीमोव्स्की की **'शाउट'** आदि मुझे इसी प्रकार की फिल्में लगीं.

▣

आंद्रे तार्कोव्स्की (1932-   ) की तीनों फिल्में **'इवान्स 'चाइल्डहुड'** (1962) जो कि तार्कोव्स्की की पहली लंबी फिल्म है, **'आंद्रे रुबलेव'** जो 1966 में बनी लेकिन रूस में 1971 में दिखायी गयी और **'सोलारिस'** (1971), इस बार दिल्ली में दिखायी गयी थीं. तार्कोव्स्की संसार के अत्यंत प्रतिष्ठित फिल्म निर्देशकों में से हैं लेकिन रूस के बाहर उन्हें जितनी मान्यता प्राप्त है उतनी रूस में नहीं. उनकी फिल्में सहज बोधगम्य नहीं और एक ऐसे समाज में जहां सामान्यीकरण और लोकप्रियता को सबसे पहले ज़रूरी माना जाता हो वहां उन फिल्मों की अत्यंत जटिल शैली सहसा कठिनाई उत्पन्न कर सकती है. **'रुबलेव'** में अगर आत्मकथात्मक तत्त्व भी पढ़े जायें तो रूस में एक दूसरे स्तर पर भी कठिनाई उत्पन्न हुई होगी—मध्ययुगीन कलाकार रुबलेव (1370-1430) की जीवनी को माध्यम बनाकर तार्कोव्स्की ने उस समय की बर्बरता को चित्रित किया है जिससे परेशान होकर रुबलेव ने कला छोड़ कर अंत में संन्यास ले लिया था. फिल्म बहुत ही कुशलता से अनुभूति के दो भिन्न स्तरों पर चलती है—एक ओर तो रुबलेव के अत्यंत संवेदनशील मानसिकता के स्तर पर और दूसरी ओर उतने ही नृशंस ऐतिहासिक तथ्यों के स्तर पर. **'सोलारिस'** में हम तार्कोव्स्की की इस अत्यंत आत्मान्वेषी और प्रयोगशील कला को मानव मन के एक बिल्कुल दूसरे आयाम को खोजते देखते हैं—इस खोज में उनकी कला साइंस-फिक्शन और रहस्यात्मक चिंतन की उस संधि पर विचरती है जहां समय लौकिक समय नहीं है, जहां कुछ अंतरिक्ष यात्री अपने पिछले जीवन को फिर से जीते और अपनी ग़लतियों को महसूस करने के लिए विवश होते हैं.

तार्कोव्स्की की फिल्मों की गंभीर और विचारशील शैली हमारे उस संस्कार को भी तोड़ती है जो सिनेमा से केवल मनोरंजन, यानी एक दिलचस्प कहानी की ही मांग करते हैं. साइंस फिक्शन-सी लगते हुए भी **'सोलारिस'** साइंस फिक्शन नहीं है—उस विधा का एक बहुत ही गंभीर और कलापूर्ण इस्तेमाल है. इसी तरह **'रुबलेव'** में तार्कोव्स्की ने एक जीवनी को लिया ज़रूर है लेकिन फिल्म में जीवनी की क्रमबद्धता न रख कर एक प्रभाववादी चित्र की सी असंबद्धता रखी है, और अगर हम 'असंबद्धता' को असंगत मान लेने की जल्दी न करें तो तार्कोव्स्की निश्चय ही एक अनूठी शैली में अपनी बात कह सके हैं. रुबलेव की जीवनी, उसकी कला और उसका समय, इनकी तीन गतियां एक दूसरे को काटती हुई-सी एक ही कैनवस पर चलती हैं, लेकिन फिर भी तीनों की स्वतंत्र पहचान अंत तक सुरक्षित रहती है.

▣

एक कला अपने आपमें जितनी बड़ी होगी उसे एक सीमित व्याख्या में बांधना उतना ही मुश्किल होगा—और यह मुझे मिक-

←सातवां फिल्म समारोह : ज्यूरी के सदस्य. ज्यूरी के अध्यक्ष हैं श्री ओस्मान संबेन (सबसे नीचे, बायीं ओर) तथा सचिव श्री एम. वी. कृष्णस्वामी (नीचे से दूसरी पंक्ति, दायीं ओर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोश यांचो (1921-)की **'आग्नूस देई'** फिल्म देखते हुए बराबर लगा. ऊपर से जरूर यांचो ने अगस्त 1919 में क्रांति-पुनर्क्रांति की जिल्द रखी है लेकिन उतने ही को फिल्म का पूरा विषय मान लेना उस गहरे आशय से अछूते रह जाना है जिसे यांचो की अत्यंत सतर्क और मार्मिक फिल्म भाषा में पढ़ा जा सकता है—वह अनवरत चलता उबाऊ इतिहास-चक्र जिसमें राजनीति, धर्म, फौजें, हत्याएं, मनुष्य के भाग्य के साथ क्रूर खेल खेलते हैं लेकिन उसके अस्तित्व को मिटा नहीं पाते. 1969-71 के बीच यांचो ने अपनी तीनों फिल्मों में—**'द कन्फ्रंटेशन'**, **'आंगुस देई'** तथा **'रेड साम'** में एक ही शैली अपनायी थी—खुले मैदान, पानी, आकाश, सिपाही, घुड़सवार, नग्न देह, सामूहिक राष्ट्रीय गान और नृत्य... मानो ये स्थायी भाव हैं और पूरा इतिहास एक तरह की नृत्य-नाटिका है जिसके द्वारा हम अपने भीतर कहीं छिपे सत्यों को टटोलते हैं. इस अर्थ में मैं यांचो की फिल्मों को उतना वस्तुपरक नहीं मानता जितना आत्मपरक—और इसका पर्याप्त संकेत उनकी फिल्मों की उस सात्विक सादगी में व्याप्त रहता है जहां प्रभाव उत्पन्न करने के लिए चीज़ों का इस्तेमाल न्यूनतम है.

इस सादगी का एक बिल्कुल दूसरा पक्ष ज़ोल्तान फ़ाबरी (1917-) की फिल्मों में उद्घाटित होता है. फ़ाबरी की फिल्मों का कथन जितना सशक्त होता है उनका शिल्प या क्राफ्ट उतना ही सादा और आडंबरहीन. फ़ाबरी की **'फ़िफ्थ फ़िसील'** (जो पिछले वर्ष मद्रास उत्सव में दिखायी गयी थी) की अपेक्षा यद्यपि **'हंगेरियन्स'** (जिसे इस वर्ष पुरस्कृत किया गया) मुझे कम पसंद आयी, लेकिन इस फिल्म में भी अपने विषय की सूक्ष्म और निश्चित पकड़ में फ़ाबरी कहीं नहीं चूकते. फ़ाबरी ने हंगरी के कुछ किसानों के जर्मनी में बारह महीनों के प्रवास को केंद्र में रखकर द्वितीय महायुद्ध की कुछ ऐसी विभीषिकाओं को सरल किसानी समझ द्वारा उद्घाटित किया है जो आमतौर पर बहुत बड़े फ़लक की मांग करती हैं. फ़ाबरी एक कथानक का ताना-बाना नहीं बुनते, एक खास तरह की समझ द्वारा अनुभव किये जा रहे कटु यथार्थ को चटक उभारते हैं. वे कहीं भी फिल्म को नाटकीय नहीं बनाते, फिल्म को ज़िंदगी की नाटकीयता पर टिप्पणी की तरह प्रस्तुत करते हैं.

▣

जीवन अपने आप में अति सरल भी है और अति नाटकीय भी. नाटकीय को सरल के नज़दीक लाना अगर एक तरह की कला है तो अतिनाटकीयता दूसरे तरह की कला जिसके अनेक आयाम आधुनिक कलाओं में भी उद्घाटित हुए हैं. कभी-कभी हम एक जीवन को नहीं, एक नाटक को जीते हैं इतने गहरे यकीन के साथ कि दर्शक और प्रदर्शक, नकली और असली, काल्पनिक और अकाल्पनिक, मिथकीय और वर्तमान के बीच भेद ही मिट-सा जाता है. ग्रीक पुराकथा मीडिया के कथानक के समानांतर आधुनिक वैवाहिक जीवन की विषमताओं को रखकर जूल्स दासें (1911-) ने ऐसे ही एक प्रसंग को **'ड्रीम ऑव पैशन'** का विषय बनाया है. कथानक तीन (कभी समानांतर—कभी एक दूसरे को काटती) धाराओं में चलता है: मीडिया की प्राचीन कथा को अगर फिल्म की आधार-लय मानें तो उसके एक ओर एक समकालीन अमरीकी पत्नी की वास्तविक घटना है जो अपने पति के तरीकों से खिन्न आकर अपने बच्चों की हत्या के अपराध में जेल काट रही है. और दूसरी ओर एक नाटक निर्देशक और उसकी प्रसिद्ध अभिनेत्री पत्नी है जो मीडिया नाटक खेलते समय अपने पारिवारिक जीवन की विसंगतियों और उस अमेरिकी स्त्री के करुण जीवन से उलझ जाते हैं.

वर्तमान जीवन की विसंगतियों और विषमताओं को मिथकों के जरिये चित्रित करना आधुनिक साहित्य का भी एक प्रमुख पक्ष रहा है—और यह फिल्म इस माने में निश्चय ही एक साहित्यिक स्वाद देती है. विशेष रूप से अभिनय के स्तर पर वह हमें उसी तरह झकझोरती है जिस तरह एक उच्च कोटि का नाट्य प्रदर्शन—अभिनय चाहे बिल्कुल शास्त्रीय ढांचे में बड़ी सतर्कता से ढाला गया मेलीना मरकूरी का अभिनय हो, चाहे उतना ही कुशल एलेन बस्टीन का यथार्थवादी अभिनय.

पूर्वी योरुप, खासतौर पर पोलिश फि
में, इधर हम एक खास तरह का आत्मा-
न्वेषण पाते हैं जो कभी-कभी हमें अस्ति-
वाद की याद दिलाता है. विसंगतियों के
अर्थहीनता से उपजने वाली वह कि
चिंता जो केवल भौतिक स्तर पर
नहीं होती, कहीं न कहीं भौतिक से
कुछ चाहती, या कुछ जानना चाहती
मन:स्थतियां जो कविता के निकट
खोज जो तर्क की भाषा से ज़्यादा अनु
की भाषा को प्रामाणिक मानती
("मैंने हमेशा अपने जीवन में एक अनु
के बाद उसकी भाषा को पाया है. मैं
एक अनुभव से गुज़र रहा हूं. उसकी
मेरे पास नहीं है." प्रसिद्ध नाटकक
ग्रोतोव्स्की ने अभी हाल ही में कहा
तीसरी दुनिया और पूर्वी योरुपीय
के सिनेमा में अब एक नयी आत्मसं
प्रखरता, अपने समय और समाज में
रहे आदमी की भीतरी और बाह
ज़िंदगी को सही-सही समझने और चि
करने की गंभीर और ईमानदार कोशि
को साफ पहचाना जा सकता है.

▣

एक बार पूछे जाने पर कि आपको
फ्रास्ट की **'शाउट'** कहानी ने क्यों आ
किया? इंग्लैंड में काम कर रहे पो
फिल्म निर्देशक स्कोलिमोव्स्की ने कहा
"उसमें छिपी विसंगतियों और अनि
नीयता ने. मुझे लगता है कि हम हर
द्विविधाओं और दुहरे-दुहरे अर्थों से घि
आप जानते हों शायद कि मैंने कवित
शुरू किया था—मेरे तीन कविता-
छप चुके हैं. मेरा दिमाग़ चलता ही
तरह है जैसे कविता में. सीधे वर्णन
विवरण का रास्ता छोड़कर भटक जा
मुझे कोई परेशानी नहीं होती—और
तरह की कहानियां मुझे आश्वस्त कर
जिसमें यकीन ही नहीं बेयकीनी के
भी पूरी गुंजाइश हो. अर्थहीनता से
हर समय घिरे हैं—मैं उसे केवल अ
करता हूं जो मुझे छूता है, मेरी पहु
आता है... मेरी **'शाउट'** फिल्म में
ज़्यादा ऊलजलूल है, नायक बेट्स
वह दुनिया जो उसके चारों तरफ है
वह इसीलिए बीमार है क्योंकि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह नहीं है? आप कैसे कहेंगे कि एक पेड़ नार्मल होता है या नहीं?"

'शाउट' कहानी का पूरा ढांचा कविता का-सा है जो विश्वसनीय और अविश्वसनीय की संधि रेखा पर चलता है. ग्रेव्स स्वयं एक प्रख्यात कवि हैं जिनकी कहानी लगभग एक कविता का अनुभव कराती है और यह संयोगमात्र नहीं कि स्कोलीमोव्स्की की अपनी काव्यात्मक संवेदनाएं भी इसे एक फिल्मी अनुभव बनाते समय कहानी की अपेक्षा उसके काव्यात्मक अनुभव को ही विस्तार देती हैं. बिंबों, ध्वनियों और कल्पना का संयोजन इतना एक कहानी नहीं कहता जितना एक खास तरह के रोमांच की प्रतीति कराता है. ध्वनि को लेकर (जो कहानी की अपेक्षा कविता में कहीं ज़्यादा महत्व रखती है) स्कोलीमोव्स्की विशेष प्रयोगशील रहे हैं, "चिल्लाहट के जिस घातक असर को मैंने फिल्म में दिखाना चाहा उसका ताल्लुक सिर्फ आवाज़ की तेज़ी या भराव से नहीं था, उसे अचानक और कई तरह से भरपूर बनाना था—तो मैंने उसमें तमाम तरह की दूसरी आवाज़ों को भी भरा, कई ट्रैक्स पर एक साथ, नियागरा प्रपात... राकेट के छूटने की आवाज़.... जो भी सूझा... लेकिन आदमी के जी-तोड़ चिल्लाने की आवाज़ को फिर भी इन सबसे ऊपर रखा."

▣

यानुसी अपनी 'स्पाइरल' फिल्म में काव्यात्मक से हटकर लगभग विचार के स्तर पर एक ऐसे अकेले व्यक्ति की स्थिति को सोचते हैं जो जीवन की निरर्थकता से ऊब कर अंत में आत्महत्या कर लेता है—लेकिन उसकी आत्महत्या के अंतिम भौतिक तथ्य से ज़्यादा ट्रैजिक हैं वे तमाम आत्महत्याएं जिन्हें वह मरने से पहले ही मानसिक स्तर पर कई बार कर चुका होता है. वह बार-बार घूम-फिर कर एक ऐसे नतीजे पर पहुंचता है जिस नतीजे में और मृत्यु में कोई फर्क नहीं. नायक कई तरह के लोगों की जीवन दृष्टि में हस्तक्षेप करता है अपनी जीवन-दृष्टिहीनता से, मानो यह साबित करने के लिए कि कोई भी जीवनदृष्टि उसके भीतर के खालीपन को भर सकने में सक्षम नहीं.

सवाल यूनिवर्सल एप्रोच का

मैक्स मूलर भवन में जर्मनी के 'न्यू वेव सिनेमा' पर एक गोष्ठी हुई. इस गोष्ठी में कई महत्वपूर्ण सवाल उठाये गये. एक सवाल सिनेमा की 'यूनिवर्सल एप्रोच' के बारे में था कि जैसे हौफ ने एक फिल्म में जर्मनी के गरीब किसान के पास 'मर्सडीज़ ट्रक' दिखाया है, लेकिन अफ्रीका के दर्शक तक यह बात नहीं पहुंचती क्योंकि वह सोचता है, इस के पास मर्सडीज़ ट्रक है, फिर यह कैसे गरीब है!

एक अन्य समीक्षक का कहना था कि सामाजिक व्यंग्य भी विदेशी दर्शक तक पहुंचना मुश्किल है. जैसे जर्मन 'स्लाटर हाउस' के दृश्य को अगर अफ्रीकी दर्शक देखेंगे तो उनमें उसे व्यंग्य नहीं टैक्नोलॉजी का विकास नज़र आयेगा.

एक अधिक समर्थ जीवनदृष्टि की खोज—शायद यही 'स्पाइरल' का एक बहुत ही छिपा हुआ आशय है.

▣

मैंने यहां कुछ ऐसी फिल्मों को लिया है जो मुझे लगा कि एक ऐसे बिंदु से देखी जा सकती हैं जिस बिंदु से हम साहित्य की अनेक विधाओं को देखते हैं—और इसी बिंदु से देखते हुए एक बिल्कुल अनूठे और अलग किस्म की फिल्म **'द मेमोरेबिल पिलग्रिमेज ऑव एंपेरेर कांगा मुस्सा फ्रॉम माली टु मक्का'** (शाह कांगा मुस्सा की स्मरणीय यात्रा) की चर्चा न करना 'यात्रा-विवरण' जैसी साहित्यिक विधा के सर्वथा एक नये और रचनात्मक इस्तेमाल की अवहेलना करना होगा. **'कांगा मुस्सा'** को 'यात्रा-विवरण' न कहकर 'यात्रा-कथा' कहना ज़्यादा ठीक होगा. एक अफ्रीकी नवयुवक माली से मक्का तक आज के अफ्रीका में वही यात्रा करता है जो 700 साल पहले उसके पूर्वज कांगा मुस्सा ने की थी. और यह यात्रा केवल भौगोलिक नहीं, इतिहास में भी यात्रा है, बल्कि यों कहें कि भूगोल के द्वारा इतिहास में यात्रा है. यह फिल्म बड़े ही कलापूर्ण ढंग से आज के अफ्रीकी जीवन और इतिहास के बीच सूक्ष्म कड़ियां जोड़ती और मार्मिक काव्यात्मक क्षणों को रचती है.

▣

एक फिल्म हमारे लिए किस प्रकार का अनुभव रच पाती है यह बहुत कुछ एक निर्देशक की अपनी दृष्टि पर निर्भर है साथ ही उस व्यवस्था पर भी जिसमें फिल्म जैसे महंगे माध्यम को, अपनी कलात्मक पहचान को स्पष्ट रखना है. फिल्म भी भाषा की तरह, एक माध्यम है जिसका इस्तेमाल महज़ सूचना के लिए, प्रचार के लिए या मनोरंजन के लिए भी हो सकता है—और हर हालत में वह एक तरह के रचनात्मक और समाज के लिए उपयोगी भी हो सकती है—लेकिन एक समर्पित कलाकार के लिए इस माध्यम की कलात्मक संभावनाओं को गहराई से खोजने के मतलब हैं इसमें एक शिक्षित और गंभीर आत्म-सजगता का रचनात्मक हस्तक्षेप. फिल्म जैसे तकनीक-प्रधान, महंगे और जनप्रिय माध्यम के साथ यह खतरा सबसे अधिक है कि आज की टेक्नोलोजी और जनरुचि के बीच इस तरह के व्यावहारिक और व्यावसायिक रिश्ते बन जायें जिसमें कला के लिए जगह ही न बचे, या बचे भी तो बिल्कुल हाशिए में. इस जगह की रक्षा, और उसे अधिक से अधिक विस्तृत करने की कोशिश, मुझे इन फिल्मों का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष लगा. अंधेरे में बैठकर चमकीले चित्रपट पर फिल्में देखते हुए कभी-कभी एक अजीब-सा विचार मेरे मन में आया—रोशनी का अनुभव हमारे मन के अंधेरे कोनों में कहीं आज भी एक आदिम चमत्कार के रूप में जीवित है : रोशनी की चकाचौंध को इस तरह भी इस्तेमाल किया जा सकता है कि वह एक खास तरह का अंधापन हो, लेकिन इससे बिल्कुल विपरीत तरह रोशनी को इस्तेमाल करना अंधेरे के खिलाफ़ एक कला भी है और एक क्रांति भी! □

● विष्णु कुटी, महानगर, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्म समारोह: कुछ झलकियां

- चयन समिति ने लगभग 50 फिल्मों में से प्रतियोगिता के लिए कुल 24 फीचर फिल्में चुनीं. इनके अतिरिक्त लघु-फिल्मों को भी चुना गया. इन फिल्मों से 21 देशों का प्रतिनिधित्व हुआ.
- अफ्रीका के देशों में से केवल मिस्र की ओर से समारोह में फिल्म शामिल हुई, जबकि दो अफ्रीकन देशों, सेनेगल और मोरक्को से दो फिल्मकार निर्णायक मंडल में शामिल होने आये.
- भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान और बांग्ला देश ने प्रतियोगिता में भाग नहीं लिया. चीन, नेपाल और श्रीलंका ने अपनी फिल्में भेजीं.
- सूचना-वर्ग में कुल 98 फिल्में प्रदर्शनार्थ चुनी गयीं थीं. समारोह में 400 से अधिक प्रतिनिधियों के शरीक होने की बात कही गयी थी, जबकि उतने शामिल नहीं हुए. विदेशी प्रतिनिधि 100 होना बतलाया गया था, वे भी पूरे नहीं थे.
- चयन समिति को संभवतः निर्देश थे कि सेक्स व हिंसा वाली फिल्मों के चुनाव में सावधानी रखी जाये. परिणामतः दर्शक बहुत कम रहे.
- यह पहला अवसर था, जबकि लोकसभा सदस्यों को मुफ़्तिया पास नहीं देकर एक नयी परंपरा स्थापित हुई.

कहानीः फ़िल्मों और फ़िल्मकारों की

▣ हरिश्चंद्र …

पहली फिल्म 'गमन' से ही बहुचर्चित मुजफ़्फ़र अली

हर चीज़ की एक कहानी होती है—उसकी ज़मीन से लेकर रूप और प्रभाव तक की कहानी. पर 3 जनवरी से 17 जनवरी तक दिल्ली में हुए सातवें अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह की कोई एक कहानी नहीं है, बल्कि ये समारोह समूचा कहानी-संग्रह ही है. ये कहानियां हैं—फिल्मों की, सरकार की, आमंत्रित अतिथियों की, अनामंत्रित अनातिथियों की, देश की, विदेश की, शराब की बंदगी की और शराबबंदी की. सारी कहानियां 'एक दिल के टुकड़े हजार हुए' की तर्ज में अशोका होटल, मौर्य होटल और विज्ञान भवन के बीच बिखर गयी हैं. और जब किसी चीज़ के टुकड़े हज़ार हो जायें तो कोई हिस्सा ज़्यादा चमकता है, कोई कम चमकता है. कोई असल होता है और कोई असल के धोखे में उठा लिया जाता है. . .इस समारोह का माहौल भी कुछ ऐसा ही है. . .

'जुनून' के प्रदर्शन पर समारोह शुरू होना है. विज्ञानभवन के दायें-बायें पुलिस का इंतज़ाम. शशिकपूर ने एक क्लासिक फिल्म बना दी है. यों भी घोर व्यावसायिकता के बीच शशि अपनी क्लासिकता के लिए प्रसिद्ध हैं. संस्था का नाम 'फिल्मवाला' रख रखा है बड़े नाटक किये हैं अब तक. कभी 'काबुलीवाला' कभी 'शेक्सपियरवाला' अब 'जुनून' बना डाली है. निर्देशक क्लासिक हैं—श्याम बेनेगल. चूंकि हर क्लासिक फिल्म छोटे बजट की होती है, इसलिए शशि साहब ने श्याम बेनेगल के साथ एक-स्वर होकर बतलाया है कि 'जुनून' छोटे बजट की फिल्म है. वह सिर्फ़ यानी कि मात्र लगभग 60 लाख में बनी है.

▣

बहरहाल 'जुनून' से फिल्म फेस्टिवल शुरू होता है और जुनून की तरह 3 जनवरी से 17 जनवरी तक … चला जाता है.

फिल्मोत्सव निदेशालय ने शु… दी थी कि अनुमानित आय 38… लाख रहेगी, जबकि व्यय 42 लाख … 3.25 लाख होने वाले घाटे को पूरा … जाने कि उम्मीद थी. सुना गया … 46 लाख से अधिक आय हुई है, पर … 50 लाख के करीब चला गया. … आंकड़े निदेशालय न दे तब तक … को पता नहीं चलेगा कि क्या … कैसे हुआ?

सरकारी ग़ैर-सरकारी हर सेमि… में सामान्यतः कई-कई लोग, … घोषित किया जाता था, गायब … अगर 'अदर सिनेमा' वालों द्वारा … जित 6,7 और 8 जनवरी के सेमि… में घोषित-प्रचारित वक्ताओं में से … कुछेक गायब होते थे, तो 9 जनव… आयोजित हुए सरकारी सेमि… 'विकासशील देशों में सिनेमा' … अक्सर महत्वपूर्ण नाम गायब रहे…

सेमि… सेमिना… देखा ग… पर कम… फिल्में… ज़्यादा… को 'इं… मेकर्स'… हुए ही… श्याम… कि संस… अनुसार… सेंसर… सेंसर ह… के फिल… नहीं मि… दार से… वाली…

▣ ज़्यादात… पर अप… गया. … असफल… अक्ल न… हुईं!'

यह… फिल्म… विशेष… समारोह… सेमिना… पृष्ठः 5…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेमिनारों से स्पर्श तक : सई परांजपे

सेमिनार के पहले, बाद, और बीच में देखा गया कि लोग सिनेमा के विकास पर कम विचार कर रहे हैं, अपनी-अपनी फिल्में आयात-निर्यात करने के बारे में ज़्यादा चख्-चख् कर रहे हैं. बासु भट्टाचार्य को 'इंटरनेशनल फोरम ऑफ फिल्म मेकर्स' के निर्माण की भूमिका बनाते हुए ही सारे समारोह में देखा गया. श्याम बेनेगल निरंतर यह तर्क देते रहे कि सेंसर बोर्ड ही ग़ैर-ज़रूरी है. उनके अनुसार उनका विश्वास है कि सरकारी सेंसर के नियंत्रण के बजाय जनमत का सेंसर हो. वह भूल गये कि इस बार के फिल्मोत्सव को दर्शक केवल इसलिए नहीं मिल पा रहा है, चूंकि उसे चटखारेदार सेक्स और अपराधोत्तेजक हिंसा वाली फिल्में नहीं मिल पायी हैं.

■

ज़्यादातर लोगों को दिल्ली टेलीविजन पर अपने इंटरव्यू के लिए चिंतित देखा गया. जो सफल हुए, वे गद्‌गद्‌ थे जो असफल हुए उनके अनुसार 'सरकार को अक्ल नहीं है और व्यवस्था ठीक नहीं हुई!'

यह पहला अवसर था जब किसी फिल्म समारोह में हिंदी लेखकों—विशेष कर दो उपन्यासकारों—को समारोह की ज़्यादातर गतिविधियों, सेमिनारों और गप-गोष्ठियों में सक्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया गया. एक हिमांशु जोशी और दूसरे रामकुमार भ्रमर. हिमांशु के बारे में मालूम हुआ कि वे 'स्क्रीनिंग कमेटी' के सदस्य थे, पर यह मज़ेदार बात थी कि वे पूरे समारोह में ही स्क्रीनिंग करते रहे. रामकुमार भ्रमर, बासु भट्टाचार्य, मुज़फ्फर अली, सई परांजपे या 'कादंबरी' के निर्माता मधुसूदन कुमार को साथ-साथ देखा जाता रहा.

नेशनल स्कूल ऑव ड्रामा के कुछ छात्र-छात्राएं गेटकीपरी कर रहे थे. एक ओर यह अच्छी बात थी कि दो ही सही पर लेखकों ने समारोह में भाग लिया तो दूसरी ओर 'कॉमर्शियल' और 'क्लासिकल' सिनेमा को लेकर एक पत्रकार से भ्रमर को जोरों से उलझते पाया गया.

पत्रकार ने पूछा था, "सुहागदान जैसी कॉमर्शियल फिल्म कौन लिख रहा है—आप या मैं?"

"आप फिल्म क्या लिखेंगे, फिल्मी अखबार लिखिए!"

बात बढ़ती, पर इसी बीच कोई और सज्जन आये और भ्रमर उनके साथ खिसक लिये.

▣

कला फिल्मों को लेकर ज़बानी चख-चख ही हुई हो, ऐसा ही नहीं है. टेलीविजन पर भी यह चख-चख समारोहियों के द्वारा पहुंची. बच्चन श्रीवास्तव द्वारा लिये जा रहे एक टी. वी. इंटरव्यू में शिवेंद्र सिन्हा ने फरमाया कि आप यानी बच्चन श्रीवास्तव कला फिल्मों के लिए अपनी पत्रिका में क्यों नहीं लिखते? इस पर सिन्हा के साथ दूसरे भेंट-दाता बासु भट्टाचार्य ने कहा, "अगर ये अपनी मैगज़ीन में कला फिल्म के लिए लिखेगा तो इनका पत्रिका कौन खरीदेगा?"

समारोह की सबसे तकलीफ़देह कहानी है—भारत गौरव निर्देशक सत्यजीत राय का लगभग अंतिम दिनों समारोह में दीखना. वह भी काफी उदास और विरक्त . . .समारोह ने अपने पीछे कई प्रश्नचिह्न छोड़े हैं, पर यह प्रश्नचिह्न बहुत बड़ा है! □

● मकान नंबर—6293, ब्लाक—6 गली नं-3, देवनगर, नयी दिल्ली—110005.

7iffi फिल्म समारोह : स्याह हाशिये

▣ ब्रजेश्वर मदान

फिल्म समारोह में दैनिक व मासिक और पाक्षिक पत्रों के प्रतिनिधियों के साथ जो भेदभाव किया गया, उसके बारे में जब संबंधित अधिकारी से पूछा गया तो उसका जवाब लाजवाब था, "दैनिक पत्र, मासिक और पाक्षिक पत्रों से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि वे 'ब्रेकफास्ट' से पहले पढ़े जाते हैं और लोगों पर उनका असर ज्यादा देर तक रहता है."

▣

जिन सिनेमाघरों में फेस्टिवल की फिल्में दिखायी जा रही थीं, वहां भीड़ को अनुशासन में रखने के लिए पुलिस तैनात की गयी थी. इस बार भीड़ चूंकि थी ही नहीं, इसलिए पुलिस को अपने आपको ही अनुशासन में रखना पड़ा.

▣

विकासशील देशों के सिनेमा की गोष्ठी में बासु भट्टाचार्य ने डिस्ट्रीब्यूटर्स की व्यावसायिक मनोवृति का एक खूबसूरत उदाहरण पेश किया. उन्होंने कहा कि ताशकंद में उनकी एक फिल्म डिस्ट्रीब्यूटर से मुलाकात हुई, जिसने उन्हें बताया कि उन्होंने एक फिल्म के वितरण अधिकार लिये. फिल्म में दो ट्रैक थे, इसलिए उन्होंने उसे 'एडिट' करके दो फिल्में बना दीं. यानी डिस्ट्रीब्यूटर ने एक फिल्म खरीदी और दो बेच दीं! बासु ने कहा, मैंने उनसे पूछा, आप पिकासो की पेंटिंग खरीदें और मान लीजिए कि वह पेंटिंग इतनी बड़ी है जो तीन दीवारों पर लग सकती है, तो क्या आप उसकी एक से तीन पेंटिंग बना देंगे?

▣

तीसरी दुनिया के क्रांतिकारी फिल्मकार बेन बार्का की नयी फिल्म, 'नाइट इन जाहनेसबर्ग' एक ह्वाइट साउथ अफ्रीकन के बारे में है. जो काले लोगों की लाशें मेडिकल चीर-फाड़ के लिए वैस्ट जर्मनी को एक्सपोर्ट करता है. कुछ अर्से के बाद वह इतना गिल्टी महसूस करता है कि उसकी अपनी चमड़ी काली होनी शुरू हो जाती है. बेन बार्का ने स्वीकार किया कि इसके लिए उसने काफ्का के 'मैटामोरफोसिस' से प्रेरणा ली, लेकिन स्क्रिप्ट पूरा होने के बाद उन्हें पता चला कि यह घटना साउथ अफ्रीका में सचमुच घट चुकी है.

बेन बार्का ने तीन और फिल्में बनायी हैं. पहली फिल्म '1001 हैन्डस' कालीन बुनने वाली लड़कियों की दयनीय स्थिति को उभारती थी, जिसका ख्याल बेन बार्का को तब आया जब वह कालीन खरीदने के लिए गये और वहां महिला श्रमिकों की शोचनीय स्थिति देखी. दूसरी फिल्म थी 'देयर विल बी नो आॅयल वार' जिसका प्रदर्शन छटे फेस्टिवल में समस्या बन गया था, क्योंकि फिल्म मोरक्को में बैन थी.

तीसरी फिल्म स्पेनिश नाटककार लोर्का की 'ब्लड वैडिंग' पर आधारित थी जिसका ख्याल बेन बार्का को तब आया जब वह स्पेन के खिलाफ़ एक मार्च में मोरक्को के बारे में बार्डर तक गये. वहां उन्होंने एक ऐसा गांव देखा जहां एक भी लड़की नहीं थी. पूछने पर इसका कारण पता चला कि कल ही गांव की एक दुलहन एक विदेशी युवक के साथ भाग गयी. बेन बार्का ने इस फिल्म को वास्तविक गांव में वास्तविक पात्रों के साथ निभाया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसपास बिखरी कहानियां

इत्तफ़ाक

▫ रमेशलाल आनंद

अमन एक बार बाज़ार से गुज़र रहा था. उसने देखा कि कोई नोट तहों में लिपटा पड़ा है. वह उसे उठाने की सोच ही रहा था कि दो बच्चों ने लपक कर उठा लिया. पचास रुपये का नोट था.

बच्चे तेज़ी से चल पड़े. अमन भी उन के पीछे-पीछे हो लिया. बच्चों ने रेहड़ी पर जाकर अपने बाप के हाथों में सहर्ष नोट संभलवा दिया और भाग गये.

"देखिये, मेरा पचास का नोट गिर गया था. आपके बच्चे उठा कर लाये हैं. कृपा करके मुझे दे दीजिए." अमन ने रेहड़ी वाले से जाकर कहा.

"वास्तव में नोट आपका है?"

"तो मैं क्या झूठ बोल रहा हूं?"

रेहड़ी वाले ने नोट उसे थमा दिया.

. . . नोट मेरा नहीं है. मैंने झूठ बोला है. . . मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था. . . . आखिर पचास से मेरा बन भी क्या जायेगा. . . फिर रेहड़ी वाला बेचारा. . . . वृद्ध. . . फटे कपड़ों में. . . गरीब! . . .अमन के अंदर संघर्ष शुरू हो गया.

घर जाकर उसने सारी बात अपनी पत्नी से कह दी.

पत्नी ने कहा, "ठीक है, न रुपये आप के हैं, न रेहड़ी वाले के. आप जाकर रेहड़ी वाले के साथ आधे-आधे बांट लीजिए."

अमन को सुझाव पसंद आया. वह उसी क्षण रेहड़ी वाले की तरफ चला.

"देखो बुज़ुर्ग, ये रुपये वास्तव में न मेरे हैं और न आपके. मैंने जो झूठ बोला उसके लिए मुझे पश्चाताप है. आप आधे रख लीजिए और आधे मुझे दे दीजिए." अमन ने कहा.

"बाबूजी, मैं भी आपकी तलाश में था. ये रुपये वास्तव में इस मार्कीट की जमादारनी के हैं. अभी वह रोती-रोती सबसे पूछती जा रही थी. सो, मेरा ख्याल है रुपये जमादारनी को ही लौटा देने चाहिए."

"पैसों का मिलना या गुम होना इत्तफ़ाक होता है. . . सो ये तो इत्तफ़ाक से ही मिल गये. हमें बांट लेने चाहिए." अमन ने तर्क दिया और अंततः पैसे आधे-आधे बंट कर ही रहे. ☐

उत्तराधिकारी

▫ उदयसिंह तोमर

अच्छे-खासे दिन गुज़ारते हुए मलखान को अचानक मौत डस गयी, तो परिवार पर आफ़त आ बरसी. उसकी दो पत्नियां थीं. संतान किसी को नहीं थी. छोटी पत्नी आधुनिकता के रंग में रंगी थी. उस पर यौवन सवार था.

बड़ी कहती कि पति की ज़मीन-जायदाद मेरी है. मैं ही इसकी वारिस हूं. छोटी कहती कि सब कुछ मेरा है.

गांव के प्रमुख लोगों ने पंचायत करके उनका फैसला कर दिया और मलखान का आधा-आधा हिस्सा उसकी दोनों पत्नियों में बराबर बांट दिया. पर वे फिर भी नहीं मानीं. औरत अकेली रंजणी होती है. अपना-अपना चाहती है.

उनकी बात हाई कोर्ट तक पहुंच गयी. मुकदमा चला. दोनों को अलग-अलग कटघरे में खड़ा किया गया. उनसे मामला पूछा गया तो छोटी ने कहा, "सरकार मैं भूखी हूं. मैं मांगती हूं इस पेट के लिए!" और उसने अपना पेट उघाड़ कर दिखा दिया. सभी एकत्रित लोगों के दिल खिसक गये. उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा.

बड़ी से पूछा गया कि तुम्हें क्या तकलीफ है, तो वह बोली, "सरकार, जो खर्च मेरे पास है, वही इसके पास है. सवाल है पेट पालने का. हक भी यह है कि मालिक के बाद जो बड़ा हो वही चल-अचल संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है. इसके बावजूद भी मैं अपना पेट उघाड़ कर न दिखा सकूंगी. यह तो अपना पेट दिखा कर मांग सकती है, कमा सकती है. माफ कीजिए, भूखों मरना मंज़ूर, पर मुझसे ऐसा नहीं होगा!"

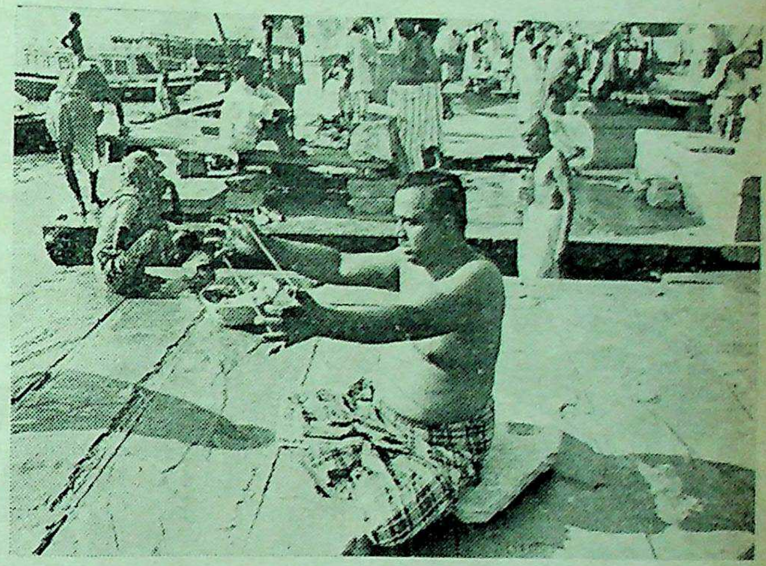

एन. के. सरीन

जज साहब के दिमाग पर दलील का असर हुआ. फैसला सुनने को सबके कान उत्सुक हुए. जज साहब ने कलम उठाई और कहा, "दोनों के बयान सुनकर हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि मलखान की छोटी बीवी भूखी नहीं रह सकती. उसके पास पेट दिखाकर मांगने की विद्या है. भूखी तो बड़ी मरेगी. यह ऐसा नहीं कर सकती. यह स्वाभिमानी पतिव्रता है. नारी के कायदे जानती है. इसलिए मलखान की संपत्ति इसी को दी जाती है."

मलखान की बड़ी पत्नी ने फिर भी घर आकर छोटी के लिए उसका हिस्सा निश्चित कर दिया. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तक आप पढ़ चुके हैं...

डाकू मलखानसिंह की बेटी की सगाई बिरज के बेटे से तय हो चुकी थी. शादी होने वाली थी पर बिरादरी के डर से बिरज ने यह रिश्ता तोड़ दिया. इस पर अपमान की ज्वाला में धधकता मलखान बिरज की हत्या करने जा पहुंचा किंतु बालसखा बिरज की बेटी की दुहाई ने उसका अंतस झकझोर डाला और वह विवश-सा बैरंग लौट आया. परंतु मन में रह गयी इस कसक ने उसे चैन से नहीं बैठने दिया. यहां तक कि वह अपने विश्वस्त सहयोगी बिंदा पर भी शक करने लगा और कुमुक तथा रसद मुहैया करने वाले व्यापारी कासीराम के कहने पर किये जाने वाले कामों से भी उसे नफ़रत होती रही. अपने प्रति धिक्कार और कुकृत्यों के प्रति अनिच्छा में मार-काट करते चले जाने के बावजूद एक दिन हुई पुलिस भिड़ंत में उसने बिंदा को खुद ही गोली मार दी. उसने अच्छा किया या बुरा... सोचते हुए उसे एक सिपाही रामलहरी की याद आयी और उसके मन में सवाल उठा--क्या सिर्फ गोली किसी को मार सकती है?...और वह बिंदा के परिवार की खोज-खबर लेने उसके घर जा पहुंचा, जहां बिंदा की मां थी और थी नयी-नकोर घरवाली!.. अब आगे पढ़िए--

एक बाग़ी का आत्म-मंथन : चौथी किस्त

...ताकि सनद रहे...

• रामकुमार भ्रमर

हतप्रभ देखता ही रह गया हूं मैं! घर, अरगनी, बुझा हुआ चूल्हा, कांसे और अल्यूमिनियम के बर्तन, बिंदा की मां और कच्चे टापरे की धरती...लगता है सब तरफ बिंदा का चेहरा चिपका हुआ है और मैं इस सच को अपने भीतर बहुत ताकत से दबा लेने के बावजूद कि मैं बिंदा का हत्यारा हूं, दबा नहीं पा रहा हूं.

बिंदा की घरवाली किसी इमारत के ढह जाने वाले शोर की तरह रोये जा रही है...सहसा मैं देखता हूं कि वह खुद भी ढह पड़ी है. उसी तरह दरवाज़े की चौखट से सटी-सटी धरती पर आ गयी है. बदहवास!

ये बुढ़िया चुप क्यों है? मैंने घबराकर बिंदा की मां को देखा है. उस पर न तो रुलाई का कोई असर है और न ही मेरी उपस्थिति का. रिक्त, ठहरी निगाहों से कोने में देखती रह गयी है...

कोने में जूते हैं. धूल खाये हुए चमरौधे जूते!...मैं पूछना चाहता हूं—'क्या ये बिंदा के जूते हैं?'

पर उसके पहले बुढ़िया बोल पड़ी है, "हरदेवा नाम है न तेरा?...क्यों?"

"हां." सिटपिटा कर मैंने उत्तर दे दिया है.

"तो हरदेवा, देख!...वो रहे बिंदा के जूते. जब फरार हुआ था तो भागते में यहीं छोड़ गया था." वृद्धा ने इस तरह कहा है, जैसे रिकार्ड पर एक घिसी हुई सुई चली हो--खरखराहट भरी आवाज़.

क्या कहूं, मैं तय नहीं कर पाता.

रुलाई हिचकियों में बदल गयी है. और हिचकियां भी ऐसी, जो रुंधती लगती हैं. मुझे घबराहट होती है. लगता है, मेरा दम घुट रहा है. इस सबको बदलना चाहिए. ऐसा चलता रहा तो मैं सुस्ताने के बजाय ज़्यादा थक जाऊंगा. मैं बात के लिए बात शुरू कर देता हूं, "बिंदा ठाकुर ने मुझे बुलाया था...तुम लोगों के हालचाल पूछने. मुझे कुछ मालूम था नहीं. सो बोले, तुम्हारी खबर-कुसल ले आऊं और तुम्हें ये रुपया भी दे आऊं." मैंने कांपते हाथों से पेंट की जेब में हाथ डालकर सौ-सौ के नोटों की एक गड्डी निकालकर बुढ़िया की ओर बढ़ा दी है.

बुढ़िया कभी मुझे, कभी उन नोटों और कभी चमरौधे जूतों की ओर देखती है. सहसा उसकी सूखी आंखों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़े चमचमा उठते हैं. लगता है, दर्द का पहला सोता फट आया है. मुझे खुशी है कि अब बुढ़िया रोयेगी. उसके रोने का मतलब होगा, उसके चेहरे पर उभर आये पथरीलेपन का खात्मा!

पर वह रोती नहीं. बस, आंखों में पनीलापन आकर रह जाता है. नोट हाथ में ले लेती है, फिर उठकर उन्हें कोने में रखी एक पुरानी, टूटी संदूकची में बंद कर आती है. अपनी जगह आ बैठती है. बिंदा की घरवाली उसी तरह रोये जा रही है. बुढ़िया अचानक सख्त आवाज़ में कहती है, "पुनिया, चाय बना दे."

"रहने दो. . .!" मैं औपचारिक हो जाता हूं. हालांकि मैं खुश हूं. . .आज चार दिनों से चाय नहीं पी सका हूं.

वह कहती है, "नहीं-नहीं, दूर से आये हो. बिंदा नहीं रहा. तुम्हारी जगह कोई और होता तो ये पैसे डकार जाता. हम भला क्या कर सकते थे उसका? . . . पुनिया चाय बना दे!"

उसी तरह हौले-हौले सिसकती हुई पुनिया, यानी बिंदा की घरवाली उठती है और भीतर वाले टापरे में गुम हो जाती है.

"तुम्हें रात के वखत कोई मोटर-गाड़ी नहीं मिलेगी." वृद्धा कह रही है.

"हां."

"सुबेरे जाओगे?" उसने सवालिया निगाह से मेरी ओर देखा है.

"हां. . .यहीं कहीं टिक रहूंगा."

"यहीं कहीं की क्या जरूरत है? तुम चाहो तो यहीं टिक सकते हो" वृद्धा प्रस्ताव करती है, "बिंदा के तो दोस्त हो तुम."

"हां. . ." मुझे किसी ने भीतर से चिऊंटी काट ली है—. . . दोस्त. . . .?

"मलखान ठाकुर अब बहुत दिन नहीं चलेगा." वृद्धा बोली है.

मैं चौंक जाता हूं. आंखों में प्रश्न भरके उसे देखता हूं, जैसे पूछा हो,—क्यों?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मलखान उस पर बहुत विश्वास करता था. . ." वृद्धा बड़बड़ाये जा रही है, "और बिंदा भी जान छिड़कता था उस पर. एक बार आया तो बोला था, 'जिधर ठाकुर जायेगा, उधर ही मैं जाऊंगा और उससे चार कदम आगे जाऊंगा!' अब वैसा आदमी कहां मिलेगा मलखान को?"

मैं कुछ नहीं कह पाता. लगता है कि मेरे भीतर से मुझ पर ही तमाचे बरसने लगे हैं. बिंदा का एक ही पहलू देखा मैंने और एक बेहूदा निर्णय कर डाला. . .काश, मैं उस पल उतावली में फ़ैसला न कर बैठता! एक बिंदा मेरे सामने वाला बिंदा था और एक यह था, जिसके बारे में मुझे उसकी मां बतला रही है. . .यह था असली बिंदा! मैं उसकी परछाईं से भयभीत हो गया था शायद.

अब यहां नहीं रुक सकूंगा. पुनिया चाय ले आयी है, गिलासों में. मैं अपने कांपते हाथ जैसे-तैसे संयत करते हुए एक गिलास थाम लेता हूं. दो चुस्कियां लेता हूं. . .

"मरते तो सब एक ही बेर हैं. . ." बुढ़िया फिर से बोलने लगी है, "पर बिंदा अभागा था. बिना जिये ही मर गया! . . .अब ये चमक-चांदनी घर में बैठी है—इसका मैं क्या करूंगी . . . यही समझ में नहीं आता."

अनचाहे ही मैं पुनिया की ओर देखने लगा हूं. उसने माथे तक ओढ़नी खींच रखी है, इसके बावजूद मुझे पुनिया का चेहरा दीख जाता है. सचमुच चमक-चांदनी! . . . गोरी, भूरी, भरे बदन वाली. बेहद खूबसूरत औरत! . . . बुढ़िया के शब्द फिर से दिमाग़ में उतर आते हैं—'. . .बिंदा अभागा था, बिना जिये ही मर गया! . . .'

▣

पुनिया की आंखों में ललामी है. मुझसे दृष्टि मिली है और उसने नज़र झुका ली है. जाने क्यों मुझे बरखा याद हो आयी है. किसी दिन मैं भी इसी तरह बिना जिये मर जाऊंगा और वह भी ललछोई आंखें लिये इसी तरह भरी बदली जैसी, आकाश पर ही टंगी जायेगी. उमर की सारी बरसात आंसू बनकर झरती रहेगी और एक दिन रीत जायेगी. मेरा दिल डूबने लगा है. इस औरत और बरखा में कोई अंतर नहीं है. शायद किसी भी बाग़ी की औरत और इस औरत में कोई अंतर नहीं रह पाता होगा.

बुढ़िया उठ पड़ती है. कराह भरी या एक निःश्वास खींचकर. वह रसोई की ओर देखती है, "पुनिया, मैं मट्ठा ले आती हूं. कढ़ी-रोटी बना दे, हरदेवा के लिए."

मैं चुप हूं. बुढ़िया बाहर चली जाती है. दरवाज़ा उसी तरह उढ़का दिया है. मैं बेचैनी से हथेलियां रगड़ने लगा हूं. बिंदा ने एक बार कहा था, "बड़ा मन होता है ठाकुर, घरवाली से मिल आऊं, पर बेबस हो गया हूं!" फिर एक बार उसने बतलाया था कि वह पुनिया की ख़ातिर ही बाग़ी हुआ है. पुनिया और उसमें 'प्रीत' लग गयी थी, पर पुनिया के घर वालों को गांव के पटेल ने दबा रखा था. चाहता था कि पुनिया उसके छोटे भाई से ब्याह कर ले. पर पुनिया ने बिंदा को सब कुछ बतला दिया था. यह भी कि पटेल और उसका भाई तनिक भी पसंद नहीं हैं उसे. . .बिंदा ने पुनिया को विश्वास दिलाया था कि वह उसकी रक्षा करेगा. उसकी ख़ातिर जान दे देगा. . . इसी कोशिश में बिंदा पुनिया को उसके गांव से भगा लाया था. चार हेती-नातेदारों से मिल-जुलकर इस गांव में पहले ही मंडप सजा रखा था. बिंदा ने पुनिया को यहां लाकर धर्म से विवाह कर लिया. थोड़ी देर बाद पटेल और उसका भाई पुलिस दल-बल के साथ आ पहुंचे. उनके पास पैसे का भी ज़ोर था, जान-पहचान का भी. ज़बरदस्ती पुनिया को ले जाने लगे थे. बिंदा और पुनिया बहुत रोये-गिड़गिड़ाये, पर सुनवायी नहीं हुई. लाचार बिंदा ने एक पुलिस वाले की राईफ़ल छीनकर दनादन पटेल और उसके भाई को गोलियों से भून डाला और भाग खड़ा हुआ बीहड़ों में! पुनिया उसकी हो गयी थी और वह खुद हो गया था बीहड़ों का! दो बार आया भी था, छिपता-बचता, पर किसी भी बार घंटे-दो घंटे से ज़्यादा नहीं टिक पाया था घर में . . .पुलिस-गार्द गांव में लगा रहता था. . . .

और पुनिया रहती थी घर में! . . . बिंदा के नाम पर जागती थी, बिंदा के नाम पर जलती हुई. कितनी ही बार सोचती रही होगी, कि वह ग़लत थी या बिंदा या दोनों ही ग़लत थे. . . निष्कर्ष नहीं निकाल पायी होगी और आज निष्कर्ष निकल गया है—बिंदा बिना जिये ही मर गया! . . .

इसका मतलब है, पुनिया जीते-जी मर गयी!

पुनिया ने पल्लू से आंसू पोंछ लिये हैं. सपाट स्वर में कहती है, "तुम उसके दोस्त हो ना?"

"हंऽ. . .हां" मैं अपने आपमें इतना उलझा हुआ हूं कि हर शब्द मुझे चौंका देता है. क्या कहना चाहती है वह? . . . यह एकांत, जीते-जी मरती पुनिया, न लड़की, न औरत! . . . मुझे घबराहट होती है. उसकी आंखों में देखता हूं—वे फ़ीकी और अर्थहीन हैं. ऐसे, जैसे एक मुर्दे की आंखें हों या फिर आंख का धोखा देने वाले पत्थर जड़ दिये गये हों . . . !

"एक काम करोगे?" वह पूछती है.

"क्या?"

"अम्मा को समझाओगे?"

"किस बात के लिए? . . . कोई कारण?"

"मुझे किसी के घर बैठायें नहीं" पुनिया का स्वर भर्रा आता है. चेहरा झुकाकर बेबसी और बेचैनी से कच्ची मिट्टी नाखूनों से कुरेदने लगती है.

मैं हड़बड़ा गया हूं. यह क्या कह दिया इस औरत ने! किसी के घर बैठने या बिठाने का मतलब है, दूसरे मर्द के हाथ जा पहुंचना. फिर मुझे इस बात से भी बहुत धक्का लगा है कि पुनिया को उसकी सास, यानी बिंदा की मां ही किसी घर में 'बिठाना' चाहती है! क्या उसे लोक-लाज, जात-बिरादरी, मान-मर्यादा किसी का भी ख़्याल नहीं? जिस पुनिया के लिए बिंदा बिना जिये ही मर गया, उ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिंदा की मां किसी और मर्द की बांहों में सौंप देना चाहती है! . . . यह बुढ़िया पागल तो नहीं है?

जरूर पागल है! . . . मैं निश्चय पर पहुंच गया हूं. पागल न होती तो अपने इकलौते जवान बेटे की मौत पर ऐसी उखड़ी-उखड़ी बातें करती! आंख में एक आंसू नहीं! . . . भयंकर पागल!

और इस पागल बुढ़िया के घर में मैं ठहरने वाला हूं! . . . अजब उलझन में फंस गया हूं मैं. मैं पुनिया को देखता हूं. वह उसी तरह सिर झुकाये चुपचाप बैठी है. सहसा मुझे याद हो आया है कि मैं बिंदा का हत्यारा हूं . . . अपने से ही भयभीत हो उठा हूं मैं.

पर नहीं, मैं सिर्फ बिंदा का हत्यारा नहीं. मैं पुनिया का भी हत्यारा हूं . . . और ये एक घिनौनी हत्या है!

"अम्मा मुझे 'ऐसी-वैसी' समझती है." पुनिया बड़बड़ाती है, "पर सोचो तो, अगर बिंदा मेरी खातिर मर गया तो क्या मैं उसकी खातिर नहीं मर सकती?" वह मेरी ओर देखने लगी है. जाने क्यों मुझे लगता है कि उसका चेहरा इनसानी चेहरा नहीं रहा है, बल्कि एक चट्टान में बदल गया है! . . . फौलादी चट्टान!

काश, मैं बिंदा को न मारता. किसी न किसी दिन वह पुलिस की गोली से ज़रूर मर जाता. मैंने बेकार अपने को उलझा लिया. मैंने बेकार ही एक राउंड खराब किया! कितनी मूर्खता की है मैंने?

थोड़ी देर न तो वह कुछ कह पाती है और न मुझे इस अहसास के सिवा कुछ समझ आता है कि मैंने भूल की . . . अजीब स्थिति होती है घटनाओं की. किसी पल सही और किसी पल गलत! बिंदा वाला मामला ऐसा ही हुआ है . . . बल्कि मेरे साथ अक्सर ऐसा हुआ है.

एक ओर रखी लालटेन की लौ एकाएक ही तेज हो गयी है. इसके बावजूद पुनिया और वह टापरा अंधेरे से मुक्त नहीं हो पाता. पुनिया ने लौ धीमी कर दी है फिर एकटक उसे देखती रहती है. . . .

"एक बात पूछूं?" मैं कहता हूं.

वह मुझे देखती है.

"बिंदा की मां . . ." मैं बोलते-बोलते सहम जाता हूं, "बुरा मत मानना पुनिया, तुम्हारी सास पागल है क्या?"

"क्यों?" वह हैरान हो जाती है.

"तीन दिन हुए बिंदा मरा है और उसकी आंख में एक भी आंसू नहीं है?" मैं देर से अपने भीतर मड़कता सवाल उगल देता हूं.

वह गंभीर हो जाती है, "नहीं, वह पागल नहीं है, पत्थर जरूर है. सब कहते हैं कि पहले वह ऐसी नहीं थी."

"फिर क्या हुआ?"

"तुम्हें मालूम है ना, बिंदा का बाप डोंगरसिंह भी डाकू था. . . . ?"

"हां."

"जब अम्मा ब्याह के इस घर में आयीं तो साल भर ही घरवाले के साथ रह पायीं. दुश्मनी में डोंगरसिंह बागी हो गया." पुनिया बतला रही है, "बिंदा गरभ में था तब. कहते हैं, जब बिंदा का जन्म हुआ तो डोंगरसिंह को पुलिस ने मार दिया. भर जवानी से अम्मा ने रंडापा सहा है. . . गांव वाले बताते हैं, उन दिनों सिरफ रोती ही रहती थी. अब सोचो तो हरदेवा भइया, जो औरत सब उमर रोयी हो, उसे कब तक रोना आयेगा? रोते-रोते ऐसी थमी है कि पत्थर हो गयी है बिल्कुल!"

ओह! . . . मेरे भीतर कुछ रिसने लगा है—ये घर, बिंदा की मां और बिंदा . . . सब! इस रिसन में सब कुछ गल-बह जाता है. बुढ़िया पागल नहीं है, बहुत जहर पी चुकी है. बहुत कुछ सह चुकी है.

पर ऐसी औरत और पुनिया को जबरदस्ती अधर्म के रास्ते डालना चाहे—मेरे लिए आश्चर्य से ज्यादा दुख की बात है. अगर बात चली तो ज़रूर कहूंगा . . . मैं निश्चय करता हूं.

किवाड़ी चरमराती है. मैं चौंककर उधर देखता हूं . . . बुढ़िया आ पहुंची है. हाथ में थामा हुआ लोटा उसने पुनिया की ओर बढ़ा दिया है, "ले, जल्दी से बना डाल!" पुनिया चुपचाप लोटा लेकर भीतर चली जाती है और बुढ़िया मेरे ठीक सामने आ बैठती है, "'हाथ-मुंह धो ले!"

"हां." मैं उठ पड़ता हूं. नहीं उठना चाहता था, फिर भी उठ पड़ता हूं . . . मुझे महसूस हो रहा है जैसे बिंदा की मां असामान्य स्त्री है. उसके स्वर में सम्मोहन शक्ति है. . . आदेश का भाव है और मुझमें ऐसा कुछ भी नहीं है कि उसे अवहेलित कर सकूं.

▣

इतने दिनों की भूख के बाद ये रोटियां. . . लगा था जैसे मुझे सब कुछ मिल गया है! एक-दो बार इस याद से मैं थोड़ा परेशान हुआ था कि मैं, जो इस घर के कर्त्ता-धर्त्ता का हत्यारा हूं, इसी घर से जीवन पा रहा हूं. . .पर बड़ी निर्ममता से ऐसी हर याद को कुचलकर मैंने पेट भर भोजन किया.

पत्थर से एक सुपारी तोड़कर बुढ़िया ने कुछ दाने मेरी ओर बढ़ाये और कहा, "अब कोई मरद नहीं रहा इस घर में. कभी-कभार आते-जाते देखभाल लिया करना बेटा! समझूंगी कि बिंदा मरा नहीं है!"

दाने थामती अंगुलियां कांप उठीं. . . मुझे झुंझलाहट हुई. बार-बार बिंदा की याद क्यों दिला दी जाती है मुझे? पर तुरंत ही मुझे लगा कि बेवकूफी भरी बात सोच रहा हूं. यह कैसे संभव है कि बिंदा के घर में बिंदा की याद ही न हो ? इस घर के रेशे-रेशे पर वही तो चस्पां है!

लालटेन की बत्ती मंद कर दी है. मेरे लिए बिछौने के नाम पर एक ओर दरी बिछा दी गयी है. वृद्धा एक ओर लेट रही है. मैं लेटूं, इसके पहले एक तौलिया तकिये की तरह लपेटकर पुनिया मेरे सिरहाने ला रखती है. एक ओर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी का लोटा भर रखा है.

मैं हौले से लेट जाता हूं. कितनी रातों के बाद ये नींद मयस्सर हो रही है मुझे? और वह भी उस घर में, जिसे मैंने सारी ज़िंदगी के लिए झुलसा डाला है! दसियों बार इस ख्याल को अपने भीतर से उछालकर बाहर फेंक चुका हूं, किंतु लगता है कि हर बार धोखा देता रहा हूं स्वयं को. ख्याल अपनी जगह कायम है. इसलिए कि अपराध अपनी जगह कायम है और उसे धो पाना किसी तरह संभव नहीं, अतः यह आत्मग्लानि बिसरा पाना भी असंभव!

"कित्ते बाल-बच्चे हैं तेरे?" वृद्धा ने हौले से बुदबुदा कर सवाल किया है.

"अभी कोई नहीं है." मैंने उत्तर दिया है और मुझे तुरंत ही लगा है जैसे मैंने अपने भीतर कोई चीज़ बहुत गहरे, आत्मा तक चुभते महसूस की है.

"अरे? ... अब तक तेरे कोई बाल-बच्चा नहीं है?" आश्चर्य से वृद्धा ने मेरी ओर करवट ले ली है, "कित्ती उमर है तेरी?"

मैं थूक का घूंट निगल लेता हूं, "यही कोई तैंतीस-चौंतीस."

"क्या बात है?"

अब मैं क्या कहूं! ... अच्छा यही है कि मैं चुप रहूं. चुप हूं.

"किसी दाई-माई को दिखाया ...?" वृद्धा पूछती है.

"सब कर लिया." मैं बड़ी सफाई से गोलमोल झूठ बोल गया हूं. चाहूं तो कह सकता हूं कि मैं मलखानसिंह हूं और मलखानसिंह भी जबसे बाग़ी हुआ है, अपने घर रुक नहीं पाया. पर यह कहा नहीं जा सकता. इसमें अकुशल है.

"मरजी भगवान की!" वृद्धा एक गहरी सांस लेकर चुप हो जाती है, "कहौती है, होंय तौ मोंड़ा-ई-मोंड़ा, नईं तो कानी मौड़ी कों-ई तरस जाएं...!"

(यानी—'पैदा हों तो बेटे ही बेटे, नहीं तो कानी बेटी के लिए भी तरस जायें!')

▣

थोड़ी देर के लिए सन्नाटा फैल गया है टापरे में. अनायास ही दूसरे टापरे में मेरी नज़र जा ठहरी है. चादरे के भीतर से लेटी हुई पुनिया की नंगी कलाई चमक रही है, गोरी, सुडौल कलाई. पर चूड़ियों से खाली ये कलाई कैसी लगती है, जैसे हरी धरती के बीच सूखी नदी लेटी हुई हो. नदी कहलाकर भी नदी नहीं.

"कौन बिरादरी है तू?" वृद्धा पूछती है.

"मैं?"

"हां."

"गूजर ठाकुर." झल्ला पड़ता हूं मैं. अजब बुढ़िया है ...पानी पिलाकर जात पूछती है?

"तो हमारी ही बिरादरी है." बुढ़िया के स्वर में संतोष और निश्चितता झलक आती है. कुछ पल चुप रहकर कहती है, "बिंदा नहीं रहा, मैं भी बहुत नहीं चलूंगी. यही कोई साल-छै महीने का खेल है. . . सोचती हूं, आंख मुंदने से पहले धरम का एक काम कर जाऊं."

"सो क्या?" कौन-सा धर्म कार्य करने वाली है वह? मैं नींद को थाम लेता हूं.

"पुनिया किसी अच्छे घर बैठ जाये तो इसकी जिंदगी भी ठिकाने लग जायेगी, मैं भी निश्चित होकर मरूंगी."

मेरी नींद एकदम उड़ गयी है. कुछ कहूं, तभी बुढ़िया का अगला प्रश्न आ गिरा है मुझ पर, "उधर पोहरी, पवा, सिगनवास. . . सीपरी कहीं कोई अच्छा आदमी है इसके लायक?"

"पर अम्मा, आदमी न रहे तो भले घर की औरतें धरम से बैठी रहती हैं!" मैं कहता हूं. मेरी खुद की भी संस्कारित मान्यता यही है, "कोई जरूरी है कि पुनिया कहीं जा बैठे?"

वृद्धा ने पुनः मेरी तरफ करवट ले ली है. उधर दूसरे टापरे में कुछ सुरसुराहट हुई है. शायद पुनिया लेटे से उठ बैठी है.

"पुनिया तो खुद नहीं चाहती, पर मेरे ख्याल में ये धरम की बात है. बिंदा जीते जी इसे जलाता रहा और अब मरने के बाद भी सारी जिंदगी जलाये—इसमें कहां का न्याव है? पुनिया की खेलने-खाने, पहनने-ओढ़ने की उमर है. मैंने जवानी का रंडापा भोगा है, खूब जानती हूं कि क्या होता है!"

"पर....?"

वृद्धा बात काट देती है, "फिर एक बात और है हरदेवा, साल-छै महीने में मेरी आंख मुंद जायेगी और ये बेचारी बिना छत्तरछाया के किस सहारे अपना धरम निभायेगी? तू तो जानता ही है, गरीब की लुगाई सब गांव की भौजाई होती है. बिंदा को मरे चार दिन नहीं हुए हैं और बगल के गांव का जहारसिंह इस घर आकर क्या-क्या कह गया है हम दोनों से. . . किसी से क्या कहें!"

मुझे लगा है कि वृद्धा की आवाज़ अब भर्रा गयी है. आश्चर्य! बिंदा की मौत ने वृद्धा का न तो गला थर्राया और न ही आंसू आने दिये थे, पर इस आवाज़ से ऐसा लगता है जैसे असुरक्षा की स्थिति ने भयभीत और निराश कर दिया है उसे. . . इस सीमा तक कि वह रोने को हो आयी है.

इसका मतलब है कि वृद्धा के इस तरह सोचने और निर्णय ले डालने का कारण कोई घटना है. . . असुरक्षित हो जाने की घटना! मैं निरुत्तर हो गया हूं. वृद्धा बड़बड़ाये जाती है, "बेटा, तू बिंदा की दोस्ती निबाहना चाहे तो यही एक काम कर दे. . . . पुनिया को किसी अच्छे घर में, अच्छे आदमी के पास पहुंचा दे. इसकी लाज-आबरू तो एक की होकर रहेगी? गुंडे-बदमास इसे गली-गैल की चीज तो नहीं बनायेंगे? उस दिन बिंदा की बेइज्जती ज्यादा होगी!"

टोरिया के पास कौन-कौन से गांव हैं. . . ? और उनमें से किस गांव में जहारसिंह नाम का आदमी है? मैं सोचने लगा हूं.

वृद्धा चुप हो गयी है. टापरे में फिर से सन्नाटा बिखर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है. देर तक यही सन्नाटा किसी रहता है और मुझे किसी जहारसिंह की याद नहीं आती.

"बिंदा होता तो जहारसिंह की ये हिम्मत हो सकती थी?" वृद्धा बड़बड़ाने लगी है, "... अरे, वह था तो बतलाने से पहले दरोगा भी दस तरह सोच लेता था कि किसकी मईया से बोल रहा है, किसकी घरवाली के सामने पड़ गया है. .. पर सब करमलेख! बिंदा नहीं मरा, जड़ें सूख गयीं हमारी!"

"कौन है ये जहारसिंह?" अचानक मैं जबड़े भींचकर पूछ बैठा हूं. मुझे याद है, राईफल मैंने किस जगह छिपायी है... जी होता है, कह दूं—'चिंता मत कर अम्मा, बिंदा नहीं रहा तो क्या हुआ, मलखान ठाकुर जिंदा है अभी!... तेरी जड़ें अब भी दसगुनी गहरी हैं.' पर यह नहीं कहूंगा—मूर्खता हो जायेगी.

"कल बृहस्पतवार है ना?"

"हां." मेरा उत्तर.

"तो कल ही देख लेना उसे...." वृद्धा बतलाती है, "कल सुबेरे ही आने को कह गया था. कह गया था कि

हौले से, पर सतर्कता के साथ चारों ओर निगाहें दौड़ाते हुए, किवाड़ खोला. वह उढ़का हुआ था. अनुमान था कि वृद्धा उस समय भी सोयी पड़ी होगी, किंतु उसकी जगह बैठी थी—पुनिया. मुझे देखते ही परेशान होकर उसने सवाल जड़ दिया था, "अरे, मैं और अम्मा तो परेसान हो रहे थे कि तुम कहां चले गये?" तभी उसकी दृष्टि मेरी राईफल और कारतूस के पट्टे पर जा ठहरी थी. सहसा वह भयभीत हो उठी थी. उसकी आंखें अविश्वास और आतंक से पूर्वापेक्षा ज्यादा फैल गयी थीं, "तुम. . . ?"

मैंने चौंककर आसपास देखा था, फिर अंगुली हौले से होंठों पर लगाकर कहा था, "शि. . शि! मैं हरदेवा नहीं हूं, मलखानसिंह हूं. ठाकुर मलखान!"

"ठाकुर?. . ." वह ज्यादा हड़बड़ा गयी.

"हां, पर याद रख. मैं तेरी अम्मा के सामने हरदेवा ही रहूंगा. . . मैंने राईफल हौले से उस कथरी के नीचे छिपा ली थी, जिस पर मैं सोया हुआ था, "इसे उठाना नहीं है. और तू बिसवास कर सकती है, किसी को किसी तरह का नुकसान नहीं पहुंचाऊंगा."

राजी-खुशी मैं और पुनिया मान जायें नहीं तो सब गांव के सामने पुनिया को उठा के ले जायेगा. पुलिस, दरोगा, चौकी-थाने सब उसके हैं. सौ बीघे का मालिक ठहरा. कहौती है—जिसकी जेब में जर हो, उसके सौ खून माफ!

हुंह!... झूठ है यह कहावत. मैं कहने वाला हूं, पर कहते-कहते रुक गया हूं. सिर्फ गुर्राकर, "हुंह!..." ही कहा है मैंने. इस समय इतना ही काफी है. बस, कुछ शब्द मैंने दाढ़ के नीचे दबाकर चकनाचूर कर दिये हैं—ज-हा-र सि-ह!. . .

सुबह आयेगा वह!

पर मुझे सुबह से पहले ही जाग जाना होगा. . . धुंधलके में. एक नया निश्चय लेकर मैंने पलकें मूंद ली हैं. . .

लालटेन की लौ मंदी जरूर है, पर लगता है कि अपने आप बढ़ती जा रही है. . . जहारसिंह. . . !

▣

उस समय भी धुंधलका था, जब राईफल लिये हुए मैंने

पुनिया बुरी तरह भयभीत हो गयी थी. मलखानसिंह का नाम कितने भय का कारण है, मैं जानता हूं और उससे भी ज्यादा मेरी किसी पल, इस तरह उपस्थिति किसी का क्या हाल कर सकती है, यह भी बखूबी जानता हूं.

"डर मत!..." मैंने उसे दम-दिलासा दिया था. . असल में मैं इस तरह खुद को दम-दिलासा दे रहा था. ऐसी स्थितियों में मैं खुद बहुत डरा हुआ होता हूं. सामने वाले से कहीं ज्यादा.

उसने थूक का घूंट निगल लिया, पर उसके गोरे चेहरे पर सफेदी की हल्की-सी परत दीखने लगी थी. सकपकाहट आंखों में.

मैंने कहा, "मैं उस जहारसिंह को देखना चाहता हूं, जो तुझे गांव भर के सामने उठा के ले जाने वाला है. आल्हा-ऊदल के किस्से तो बहुत सुने-गुने थे, पर ये जहारसिंह कौन-सा ऊदल पैदा हुआ है, जरा देखूं तो!" मेरे स्वर में दंभ और उससे भी कहीं ज्यादा कड़वाहट पैदा हो गयी थी.

वह डरती हुई उठी, भीतर टापरे में जाने लगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अम्मा कहां हैं?" मैंने सवाल किया.

"दूध लेने गयी हैं." उसने डरते-डरते उत्तर दिया, फिर दूसरे टापरे के दरवाजे में घुसते-घुसते रुक गयी. विनीत स्वर में बोली, "ठाकुर, तुम बड़े हो. तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, ऐसा कुछ मत कर बैठना कि हम जनानियां परेसानी में पड़ जायें!"

"तू बेफिकर रह!" मैंने उसे वरदहस्त दिया, "पर मेरे रहते अधरम नहीं हो सकता!" मुझे अपने आप पर आश्चर्य होने लगा था. . .एकाएक मेरे भीतर का मलखान सिंह किस तरह उफनकर बाहर आ गया है. असल में हम जैसे लोग बहुत देर अपने से ही अपने आपको छुपा पाने में असमर्थ हो जाते हैं.

वह टापरे में समा गयी. मैं आराम से उसी जगह बैठ रहा था, जिस जगह सोया हुआ था. मेरे ठीक पीछे मेरी राईफल छिपी हुई थी. थोड़ी देर बाद बुढ़िया आ पहुंची. उसने भी मेरे सुबह-सवेरे गायब हो जाने पर आश्चर्य व्यक्त किया था, पर जब मैंने उसे यह बताया कि मैं सुबह घूमने का आदी हूं, तब वह निश्चिंत हो गयी. हम सबने मुंह-हाथ धोकर चाय पी थी, फिर वृद्धा ने पूछा था कि मैं कितने बजे की मोटर से जाऊंगा?

पुनिया सामने खड़ी थी. उसने मुझे चौंककर देखा था और मैंने उसे, फिर बात संभाल ली थी मैंने. कहा था, "मैं उस जहारसिंह को देखना चाहता हूं. अपना परिचय देकर समझा दूंगा कि कोई ऐसी-वैसी बात न करे."

बुढ़िया की नज़रों में मेरे प्रति व्यंग्य उभर आया था. एक पल की खामोशी के बाद उसने कहा था, "जहारसिंह को तुम जानते नहीं हो, इलाके का असरदार आदमी है. सब उसे जानते हैं. तुम बेकार ही उससे कहा-सुनी करोगे. वह नहीं मानने वाला. चार जगह की उट्ठक-बैठक वाला है. ऐसे दबने वाला नहीं है. वह तो उसी की मानेगा, जिसकी जेब भारी हो या धौंस-दबका हो."

"पर कोसिस करने में क्या हरज है अम्मा?" मैंने उत्तर दिया था, फिर अजाने ही पुनिया की ओर मेरी नज़र चली गयी थी. वह उस पल मुझे काफी कुछ निश्चिंत लग रही थी.

मैंने देर तक सोचने के बाद निर्णय लिया था कि पुनिया की रक्षा करके मैं अपने माथे से बिंदा की हत्या का बोझ हल्का कर लूंगा. प्रायश्चित का एक अवसर दे दिया है ईश्वर ने. एक तरह से मैं पुनिया या बिंदा की मां के लिए कुछ नहीं करूंगा, बल्कि अपने लिए करूंगा. बिंदा की हत्या को लेकर जिस ग्लानि और तड़प के अहसास ने मुझे अपने भीतर आहत कर रखा है, इस तरकीब से कुछ हद तक वह कम हो जायेगा.

मैं उस तथाकथित जहारसिंह को जानता नहीं हूं. . . यह अच्छा है!

पर ज़रूरी तो नहीं है कि जहारसिंह भी मुझे न जानता हो?

मैं कुछ परेशान हो गया हूं. अगर जहारसिंह मुझे जानता होगा तो मेरे लिए ही खतरा बन जायेगा. शायद मैंने इस फटे में पैर डालकर समझदारी नहीं, मूर्खता कर दी है.

मगर अब कुछ नहीं किया जा सकता. अब अपने वचन के लिए मुझे यह खतरा मोल लेना ही पड़ेगा. मेरा स्वभाव है, जब मैं कोई ज़िद भरा फैसला कर बैठूं, फिर ज्यादा आगा-पीछा सोचने की आवश्यकता को अंदर ही अंदर मसल-कुचल डालता हूं. मैंने ऐसा ही किया.

जहारसिंह की प्रतीक्षा ज्यादा देर नहीं करनी पड़ी थी. लगभग आधे घंटे बाद ही मोटर-साइकिल की आवाज़ सुनी थी मैंने. कुछ घबरा उठा था. आजकल इलाकों के ज्यादातर थानेदार मोटर-साइकिलें इस्तेमाल करते हैं. पर इस घबराहट को बुढ़िया ने थाम लिया. उठी, बोली, "शायद वह आ गया. . .!"

"कौन?"

"वही, जहार. . .!" बुढ़िया की आवाज़ में कुढ़न और चिढ़ थी. मोटर-साइकिल की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी. और मैं उसके बारे में सोचने लगा था. जहारसिंह के पास मोटर-साइकिल होना, उसकी समृद्धता का प्रमाण है. अब मुझे अपने कार्यक्रम में कुछ फेर-बदल करनी होगी. मैं चाहूं तो जहारसिंह का बहुविधि उपयोग कर सकता हूं.

▣

भड़भड़ाती हुई मोटर-साइकिल एकदम टापरे के सामने ही आ रुकी. मैं सतर्क हो गया. पुनिया भयभीत-सी कभी मेरी ओर और कभी उस दरवाज़े की ओर देख रही थी, जिसे इस समय बुढ़िया खोल रही थी और जिससे जहारसिंह टापरे में आने वाला था. अचानक वह भीतर चली गयी थी.

मोटर-साइकिल की आवाज़ खत्म हो गयी. जाहिर था कि जहारसिंह ने उसे बंद कर दिया है और स्टैंड पर रखकर भीतर आने वाला है. तभी मुझे एक भारी, दबंग आवाज़ सुनायी दी, "राम-राम मौसी!"

"राम-राम!" वृद्धा का उत्तर था. इस तरह [illegible] पुराना, कमज़ोर दरवाज़ा हौले से चरमराकर चीख [illegible] हो. वृद्धा दरवाज़े से हटकर भीतर आ गयी, "आओ. . . [illegible]

जहारसिंह भीतर आ गया. वह लंबा-चौड़ा आदमी [illegible] उसने सफेद कुरता-पाजामा पहन रखा था. एक छोटा, [illegible] महंगा ट्रांज़िस्टर उसके हाथ में था. वह मुस्कराता हुआ भीतर घुसा था, किंतु मुझे आराम से बीड़ी पीते देखकर कुछ सकपका गया था. दृष्टि में प्रश्न उगाकर उसने [illegible] की ओर देखा.

"यह हरदेवा हैं. पोहरीवाले. बिंदा के दोस्त. कु[illegible] पूछने आ पहुंचे." बुढ़िया ने मेरा परिचय दिया.

"हुं-अूं. . .!" उसने मुझे घूरा, फिर मेरे करीब [illegible] आ बैठा. लग रहा था जैसे जहारसिंह का मन मुझे [illegible] तरह पाकर अचानक खराब हो गया है. सच भी था. . . [illegible] चमचमाते कपड़े और इत्र नहाया बदन, बालों से [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमेली की खुशबू . . . जहारसिंह जिस स्वप्न-संसार को जीने यहां चला आया था, वह अचानक ही मेरी उपस्थिति के कारण छार-छार होकर बिखर गया था. मैंने अपने भीतर गुदगुदी महसूस की. किसी के सपने रौंदने में भी कितना क्रूर सुख उठाता है आदमी!

"पुनिया! चाय बना . . . !" बुढ़िया कह रही थी. उसके स्वर में असुरक्षा भी थी, जहारसिंह के प्रति आतंक भी और उससे कहीं ज्यादा रिरियाहट भी.

जहार ने मेरी ओर गरदन टेढ़ी की, फिर दीवार से टिक गया. पूछा, "तू पोहरी में क्या करता है रे?"

"पोहरी का रहने वाला हूं." मैंने बहुत ताकत से अपने आपको दबाये हुए उत्तर दिया. मैं उसे खतरनाक ढंग से चौंकाने वाला हूं—यही सोचा है मैंने. उस समय तक मैं उसे इतना अवसर दूंगा कि वह मुझे जितना अपमानित करना चाहे, कर ले. . . उसके बाद मैं आनंद लूंगा, उस स्थिति का, जब जहारसिंह मुझे असली नाम से जानेगा! ये सफेदी पसीने से पीली पड़ जायेगी और इस चमेली के तेल की जगह पसीने की लड़ियां बालों से झरने लगेंगी. मैंने सोचा और आनंद अनुभव किया. कहा, "बरसों हुए, पोहरी छोड़ दिया. बहुत छोटा था, तभी!"

"हूं-अूं. . !" वह रोबदार ढंग से बोला, फिर उसने बड़ी लापरवाही से जेब में हाथ डालकर कैवेंडर सिगरेट की एक डिब्बी निकाली और सिगरेट सुलगायी, "तो अब कहां रहता है तू. . . ?"

"ल्हसकर."

"ल्हसकर में कौन-सी जगह?"

"गुड़ी-गुड़ा के नाके पर." मुझे ग्वालियर, आगरा, शिवपुरी, झांसी. . . कई शहरों के बारे में काफी कुछ जानकारी है. इन्हीं शहरों के जरिए अक्सर हम लोगों को मदद आती है. इसके साथ ही मुझे लगा जैसे कुछ ज्यादा ही कुरेद रहा है जहारसिंह. अगर बात बढ़ाता गया तो हो सकता है कि मैं किसी जगह निरुत्तर हो रहूं. . . और तब मैं लाचार हो जाऊंगा कि मैं बतलाऊं कि मैं कौन हूं!

बुढ़िया मुझे कुछ इस नजर से देख रही थी जैसे मैं एक बकरी का बच्चा हूं, जो शेर के पड़ोस में जा बैठा है. और जहारसिंह कुछ इसी भाव से मुझे सवाल में सूंघ रहा है. . . सूंघ नहीं रहा, एक हिंस्र मनोरंजन कर रहा है.

कमीना! . . . अभी बतलाऊंगा इसे!

मैंने बुझी हुई बीड़ी धरती पर मसल दी और उसी तरह चेहरे पर मासूमियत उगाये हुए बैठा रहा. सिगरेट का धुआं उगलता हुआ जहारसिंह बड़ी कुरेदती नजरों से भीतर वाले टापरे में देख रहा था. . . पुनिया उसी में तो है. सहसा वह मेरी ओर मुड़ा, "ल्हसकर में क्या करता है तू?"

"पुलिस में हूं."

"क्या?"

"चपड़ासी."

"हुंअ . . . !" वह गुर्राया, "यहां किसलिए आया था?"

उसने अपनी छोटी-छोटी आंखें मेरे भीतर खुपा दीं.

"बिंदा की खबर पढ़ी थी अखबार में. मन नहीं माना, सो चला आया."

जहारसिंह 'हो-हो-हो' करके हंसा. बुढ़िया चौंक गयी. दूसरे टापरे से चाय की भगौनी भरकर लाती हुई पुनिया सहम उठी—ठिठक गयी. मैंने जबड़े भींच लिये. जहारसिंह कह रहा था, "कमाल है! . . . बिंदा था बदमास. एक बदमास की खबर लेने दूसरा बदमास आ पहुंचा?" वह पुनः उसी तरह बेहूदगी से हंसने लगा.

मुझे बहुत बुरा लगा. नसों में तनाव आ गया, इसके बावजूद मैंने अपने आपको संयत रखा. 'ठहर जा बेटा. . . !' मैंने होंठों में गाली भींच डाली.

पुनिया और बूढ़ी अम्मा कुछ घबरा उठी थीं. जहारसिंह उसी तरह कहे जा रहा था, "अब कब जायेगा यहां से?"

"आज."

"हूं."

पुनिया ने चाय ला रखी. चार गिलास भी. आंचल के छोरों से भगौनी थामकर हर गिलास में चाय उंडेली, फिर गिलास मेरी और जहारसिंह की तरफ बढ़ा दिये. स्वयं भीतर जाने लगी.

जहारसिंह ने गिलास उठाया और कहा, "तू कहां चली? . . . यहीं बैठ. पंचों में. उसने मुड़कर मुझे देखा, "सहरी आदमी आये हैं कोई गांव के लौआ-पौआ नहीं हैं. ये ल्हसकर सहर का रहने वाला है. मैंने भी बहुत से सहर देखे हैं. डिल्ली, बंबे, लखनौ. . . कई. . वहां जब चाय पिलाते हैं तो मग नहीं जाते. हंस-हंसके बातें करी जाती हैं, मेहमान का जी बहलाया जाता है. क्यों हरदेवा?"

"हां-हां. . ." मैंने कहा. पर मैं बहुत कुछ झेलने लगा था. लग रहा था कि मेरे भीतर लावा खौलने लगा है और अब इस लावे को ज्यादा देर काबू नहीं किये रख पाऊंगा.

पुनिया दरवाजे पर ही ठिठक गयी थी, किंतु जहारसिंह के बकवास करने पर भी ठहरी नहीं, भीतर चली गयी. बुढ़िया ने कहा, "संकोची बहुत है. . . बिंदा के सामने ही कभी नहीं आती थी. . ." वह एक घिघियायी हुई हंसी में हंसी.

जहारसिंह ने चाय के सिप लिये. कहा, "सक्कर बहुत हो गयी."

"दूध डलवा दूं?" बुढ़िया ने पूछा.

"डालेगी तो पुनिया ही. . ." जहारसिंह बोला, फिर शैतानी मुस्कान में मुस्काया, "उसके तो हाथ में ही सक्कर है. . . दूध भी मीठा हो जायेगा और बात बरोब्बर ही रहेगी!" वह पुनः अकारण हंसने लगा.

अगले अंक में

पुनिया क्यों डरती थी? बिंदा की मां पर मलखान को सामने देखकर क्या गुजरी? और क्या जहारसिंह पुनिया को ले जा सका?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हालांकि तुम्हारा नाम कंचनकुमार श्रीवास्तव है लेकिन इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता. तुम्हारा नाम अशोक, विनय, राकेश, क, ख, या ग भी हो सकता था. दरअसल, तुम्हारा अगर कोई नाम न भी होता तो भी तुम्हारी ज़िंदगी पर इसका कोई अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ने वाला नहीं था.

अपनी पढ़ाई के दौरान तुम्हारे भीतर कुछ तमन्नाएं पलती रहीं. कुछ सपने आकार ग्रहण करते रहे, कुछ अरमान जन्म लेते रहे. कॉलेज में छात्रों की हड़ताल, तोड़-फोड़ और घेराव से अलग तुम्हारी तमन्नाओं का संसार खुशनुमा खुशबू से गमकता रहा. तुम पूरी मेहनत और लगन से अपनी पढ़ाई पर ध्यान देते रहे और अपने साथियों की ईर्ष्या का शिकार हुए. तुम परीक्षाओं में अव्वल आते रहे और अपने प्राध्यापकों की प्रशंसाएं बटोरते रहे. तुम अपने कॉलेज की नाक थे. तुम अपनी प्रेमिका के नायक थे. तुम्हारे ऊपर तुम्हारे पिता की उम्मीदें थीं, तुम्हारे ऊपर तुम्हारी मां की हसरतें थीं. तुम्हारे ही दम पर तुम्हारे परिवार के लोग अपनी-अपनी कल्पनाओं में सपनों का एक महल निर्मित कर रहे थे. तुम अपने घर की आशाओं का केंद्र थे.

तुम्हारे छोटे-से परिवार में मां-बाप के अलावा दो छोटे भाई और एक प्यारी-सी नन्हीं बहन थी और तुम अपने इस परिवार की तमन्नाओं का संसार थे. तुम अपने परिवार की तकलीफों को महसूस करते थे. तुम्हें इसका सख्त अफसो[illegible] कि तुम अपने परिवार की तकलीफों में हिस्सा नहीं ले पा [illegible] बावजूद इसके, तुम आश्वस्त थे कि अभी तुम्हारी पढ़ाई [illegible] नहीं हुई है और पढ़ाई समाप्त करते ही तुम तमाम तकली[illegible] समाप्त कर दोगे. तुम बहुत लगन से पढ़ते रहे और अपने [illegible] में आने वाले दिनों का सुखद खाका खींचते रहे.

जब तुम घर के काम-काज में सारे-सारे दिन अप[illegible] को खटते हुए देखते तो तुम अपनी मां से वायदा करते [illegible] अपनी मां की इच्छा सबसे पहले पूरी करोगे और उनके [illegible] एक बहू ले आओगे. तुम्हें अपनी अच्छी-सी प्रेमिका की याद [illegible] और एक खुशनुमा हकीकत का सपना तुम्हारी आंखों में तैर [illegible] जब तुम अपने पिता को मकान मालिक के हाथों बेइज़्ज़त [illegible] देखते तो तुम सोचते कि एक निजी मकान तुम ज़रूर बनवा[illegible] जब तुम अपने छोटे भाई-बहनों को छोटी-छोटी चीज़ों [illegible] तरसते हुए पाते तो तुम अपने मन में ये संकल्प दोहराते [illegible] उनकी ज़रूरत के तमाम सामान तुम मुहैया करवा कर [illegible] आखिर तुम्हारे भाईयों को भी हक है कि उन्हें अच्छी [illegible] अच्छी खुराक और अच्छा मनोरंजन मिले, ठीक वैसा, [illegible] तुम्हारे साथ पढ़ने वाले गैरिज़न इंजीनियर के लड़के प्रदीप [illegible] के भाई-बहनों को मिलता है.

बीच का आदमी

• धीरेंद्र अस्थाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम अपने सामने के तकलीफदेह दिनों को जी-जीकर पीछे फेंकते गये और आरामदेह ज़िंदगी को अपने एकदम करीब धड़कता महसूस करते रहे. इस बीच तुम्हारे पिता का रिटायरमेंट करीब आता गया और उनके ऊपर ग्यारह-बारह सौ रुपये का कर्ज चढ़ गया. इस बीच तुम्हारी बूढ़ी मां के हाथ भी कांपने लगे, हालांकि उनकी उमर अभी इतनी नहीं हुई थी कि उनके गालों पर झुर्रियां पड़ जातीं और उनके हाथ कांपने लगते. यह सब उन तकलीफों की देन था जिनके बीच तुम्हारा परिवार छटपटा रहा था.

इस बीच तुम्हारे भाई को इंटर के बाद पढ़ाई बंद करनी पड़ी और दूसरे भाई को हाई स्कूल के बाद. इस बीच तुम्हारी बहन आठवीं में आ गयी और उसकी बचपन वाली चॉकलेट और खिलौनों की मांग अपूर्ण ही रह गयी. अब तुम्हारे पिता की चिंताओं में एक चिंता तुम्हारी बहन की शादी कर देने की भी जुड़ गयी. जिसने तुम्हारे दिल्लगीपसंद पिता को निराशा और झुंझलाहट के समंदर में फेंक दिया.

तकलीफों के अहसास और खुशियों की कल्पना के बीच चलते हुए तुम एक दिन पाते हो कि तुम्हारे हाथ में एक प्रमाणपत्र पकड़ा दिया गया है. तुम उत्तेजना से कांपने लगते हो. खुशी की लहर तुम्हारे अंदर रेंगने लगती है. तुम चमकते हुए चेहरे और दमकते हुए विश्वास के साथ घर पहुंचते हो. तुम मां को वह प्रमाणपत्र दिखाते हो, तुम पिता को वह प्रमाणपत्र दिखाते हो, तुम अपने कॉलेज में दूसरे नंबर पर हो. प्रमाणपत्र को अल्मारी में रख कर तुम अपनी बहन को गोदी में उठा लेते हो. तुम खुशी के आधिक्य में यह भी भूल जाते हो कि तुम्हारी बहन अब बच्ची नहीं रही और तुम्हारी इस हरकत से उसे झुंझलाहट और शर्म दोनों महसूस हो रहे हैं. तुम अपने भाईयों के कंधे थपथपाते हो. तुम ज़ोर-ज़ोर से चीखना चाहते हो. तुम सारी दुनिया को ये बता देना चाहते हो कि अब तुम्हारा परिवार तकलीफों की सांसें नहीं जियेगा.

■

अचानक तुम्हें लगता है कि तुम अपनी खुशी में अकेले हो. तुम्हारी इस खुशी के प्रति तुम्हारा परिवार तटस्थ है. तुम अपने परिवार की आंखों में झांकते हो तो तुम्हें पता चलता है कि तुम्हारे परिवार की आंखों में एक अजीब-सी बेचैनी है. तुम्हें उन आंखों में एक लंबा इंतज़ार सिर पटकता नज़र आता है. तुम भाग कर अपनी प्रेमिका के पास अपनी खुशी का इज़हार करने जाते हो लेकिन तुम्हें यह देख कर सख्त अफसोस होता है कि प्रेमिका की आंखों में भी एक इंतज़ार बैचेनी भरी गश्त लगा रहा है. बहुत सारी आंखें तुम्हारा इंतज़ार कर रही हैं.

तुम आइने में अपना चेहरा देखते हो और भौंचक रह जाते हो. तुम्हें अपनी खुद की आंखों में साफ नज़र आता है कि वहां कुछ तमन्नाएं तुम्हारे इंतज़ार में हैं.

तुम वांटेड कॉलम को ग़ौर से पढ़ते हो और चार-पांच पते उतार कर ले आते हो. तुम पिता से दस रुपए मांगते हो और तीन-चार जगहों पर आवेदनपत्र भेज कर इंतज़ार करने लगते हो. इंतज़ार लंबा होता चला जाता है और तुम्हारे पिता

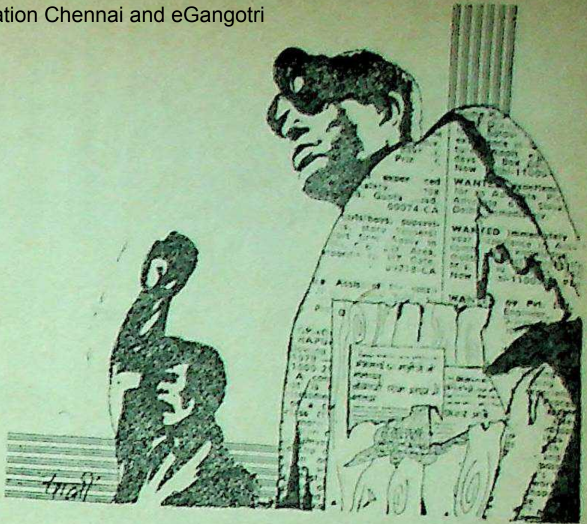

तुम्हें और पैसे देने से इंकार करने लगते हैं. तुम प्रमाणपत्र को बगल में दबाये, रोज़ सुबह घर से निकलते हो और थके चेहरे के साथ दोपहर को खाने के वक्त लौट आते हो. तुम रोज़ दोपहर के बाद घर से निकलते हो और सुस्त कदमों के साथ रात को खाने के वक्त लौट आते हो. तुम्हें पता चलता है कि तुम्हारे परिवार और तुम्हारी प्रेमिका के अलावा किसी की भी आंखों में तुम्हारा इंतज़ार नहीं है.

फाइल में रखे-रखे तुम्हारा प्रमाणपत्र मैला होने लगा है. दफ्तरों के चक्कर काटते-काटते तुम्हें अपने पैरों के लंज होने का अंदेशा होने लगता है. कॉल लैटर का इंतज़ार करते-करते तुम्हारी आंखें दर्द से तड़पने लगती हैं. तुम अपना प्रमाणपत्र उलट-पुलट कर ग़ौर से देखते हो—कहीं तुम्हें बेवकूफ तो नहीं बनाया गया है. तुम अपने भीतर ज़ोर से चीखते हो—अगर इस कागज के टुकड़े से कुछ भी नहीं हो सकता था तो तुम लगातार चौदह बरस तक इसे हासिल करने के लिए अपना पैसा और समय क्यों बर्बाद करते रहे? तुम्हें इस सवाल का कोई माकूल जवाब नहीं मिलता और तुम्हारा इंटर पास भाई गहरी उपेक्षा और गुस्से के साथ तुम्हें देखता हुआ एक प्रैस में कंपोज़िंग सीखने लगता है.

तुम्हारा इंतज़ार करने वालों की लिस्ट में से तुम्हारी प्रेमिका का नाम साफ हो जाता है और तुम अपनी हैरान और परेशान आंखों से प्रेमिका की शादी उस शहर में होते हुए देखते हो जहां शाहजहां ने अपनी प्रेमिका की स्मृति में ताजमहल खड़ा किया है.

तुम्हारे पिता रिटायर हो जाते हैं और तुम्हारा दसवीं पास भाई एक साबुन की फैक्ट्री में सौ रुपया माहवार पर अपना श्रम बेचने लगता है. तुमसे कम पढ़े होने के बावजूद तुम्हारे दोनों भाई कुल मिला कर सवा दो सौ रुपया महीना घर लाते हैं और तुम्हें देख कर उनके होंठ व्यंग्य से तिरछे हो जाते हैं. तुम्हें अपराध-बोध होता है. तुम्हारे भीतर कुंठाएं पनपने लगती हैं. तुम्हारे सपनों के रंग उड़ने लगते हैं और मां की आंखों का इंतज़ार धूमिल पड़ जाता है. तुम्हें अपने भीतर एक सुस्त अंधेरा उतरता महसूस होता है और आत्महत्या कर लेने की तुम्हारी इच्छा बलवती होने लगती है.

एक दिन तुम पाते हो कि तुम्हारे पिता की आंखों का इंतज़ार मर गया है. तुम ज़ोर से चीखना चाहते हो. पूरी तड़प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ. पूरी तकलीफ के साथ. ठीक उसी तरह जैसे तुम अपना प्रमाणपत्र मिलनेवाले दिन चीखना चाहते थे समूची खुशियों के साथ! लेकिन तुम्हारी आवाज़ तुम्हारा साथ छोड़ देती है. तुम एक के बजाय तीन-तीन, चार-चार अखबारों के वांटेड कॉलम्स में सिर खपाते हो और दिन के तीन-चार घंटे नष्ट करते हो.

तुम्हें अखबार चाटता देख तुम्हारे पिता को क्रोध आ जाता है. तुम्हारी मां तुम्हारी तुलना उन छोटे भाइयों से करती है जो तुमसे कम पढ़े होने के बावजूद कमा कर लाते हैं और तुम्हारे भाई तुम्हें हिकारत की नजरों से घूरते हैं.

और इसके बाद तुम अपने परिवार के लिए अजनबी हो जाते हो. घर की रोटियां तुम्हारे दिमाग़ पर हथौड़े की-सी चोट कर-के तुम्हारी चेतना को लहूलुहान कर देती हैं. तुम पाते हो कि अब कोई भी शख़्स तुम्हारा इंतज़ार नहीं कर रहा है, तुम अपने संसार में बिल्कुल अकेले हो, अपनी तकलीफों, अपनी कुंठाओं और अपने ग़ुस्से के साथ, तुम्हारे अंदर एक बियाबान फैलने लगा है. और तुम्हें महसूस होता है कि शीघ्र ही तुम विक्षिप्त हो जाओगे.

▣

तुम सुबह मुंह-अंधेरे उठते हो, अपने परिवार के जागने से पहले. सुबह की चाय तुमने छोड़ दी है. सुबह-ही-सुबह तुम घर से निकल पड़ते हो. सूनी सड़कें, खामोश चौराहे और उदास पेड़ तुम्हें अच्छे लगते हैं. आठ बजे तुम लायब्रेरी चले जाते हो. लायब्रेरी दोपहर एक बजे बंद होती है, तुम तब तक सारे अख़बार पढ़ डालते हो. लायब्रेरी तीन बजे फिर खुलती है. तुम तब तक का समय टैगोर पार्क में व्यतीत करते हो, जहां आवारा छोकरे ताश खेलते हैं और बीड़ियां फूंकते हैं.

अब तुम्हें दोपहर को भूख नहीं लगती. घर जाने को तुम्हारा मन नहीं करता. तुम्हें समझ नहीं आता कि तुम्हारे सपनों का क्या हुआ? तीन बजे तुम फिर लायब्रेरी चले जाते हो और शाम के छः बजे तक तरह-तरह की किताबें पढ़ते हो! उपन्यास, कविताएं, राजनीति, दर्शन और मनोविज्ञान की. तुम अधिकतर चुप रहते हो. तुम्हारे चेहरे की दाढ़ी बेतहाशा बढ़ती चली जाती है और शरीर कमज़ोर होने लगता है. छः बजे के बाद से रात गये तक तुम इधर-उधर भटकते फिरते हो.

तुम छोटी-छोटी और ग़ैरमतलब बातों में दिलचस्पी लेने लगते हो. सार्वजनिक मूत्रालय में दीवार पर लिखी मौलिक गालियों को पढ़ते हो, न्यूज़ एजेंसी के शो-केश में लगी किताबों के कवर को पढ़ते हो. तुम्हें अल्मारी में करीने से सजी सारी किताबों के और उनके लेखकों के नाम याद हैं. तुम आंख मींच कर बता सकते हो कि दायीं या बायीं तरफ से पहली, पांचवीं या नौवीं किताब किस लेखक की है! तुम रिक्शा चलाते लोगों के माथे से गिरता पसीना देखते हो, तुम सड़क पर भीख मांगते मासूम बच्चों को अपलक देखते हो, तुम पब्लिक स्कूलों और प्राइमरी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों में फर्क महसूस करते हो.

धीरे-धीरे तुम्हें यह अनुभव होता है कि यह दुनिया रहने के काबिल नहीं है. तुम फुटपाथ पर पड़े, गटर में रेंगते आदमी को देखते हो और आदमी की तकलीफों से तिलमिलाहट महसूस करते हो. रात को जब तुम लौटते हो तो तुम्हारा परिवार सो चुका होता है. खाट के पास मेज़ पर रखा ठंडा खाना तुम बे- आवाज़ किये चुपचाप खाते हो और जल्दी से पानी पीकर अ- खाट पर निःशब्द लेट जाते हो.

तुम्हारे भीतर पनपती आत्महत्या की प्रवृति बहुत मज़- हो जाती है. तुम्हें अफसोस होता है कि तुम अपने परिवार के लि- नाकारा हो, तुमने अपने लोगों से ग़लत वायदे किये. तुम रेल- पटरियों के पास पहुंचते हो और अखबार में प्रकाशित आ- हत्याओं के आंकड़ों पर ग़ौर करते हो. दूर से धड़धड़ाती हुई- आती है और तुम्हारे सामने से गुज़र जाती है.

अचानक तुम सोचते हो कि तुम्हारा अपराध क्या है? तु- तो अपनी तरफ से सारे प्रयत्न किये, फिर तुम क्यों आत्मह- करो? ग़लती तुम्हारी तो नहीं है. तेज़ ग़ुस्से के साथ तुम्- चेतना में एक लंबा चाकू चमकने लगता है. तुम आत्महत्या न- हत्या करोगे!

तुम सोचते हो. तुम उन तमाम लोगों को कत्ल कर- चाहते हो जिनके कारण आदमी को गटर में रहना पड़ता- जिनके कारण तुम अपने घर से अजनबी कर दिये गये हो, जि- वजह से सिर्फ सौ रुपए पर तुम्हारे भाइयों को अपने दस- रोज़ बेचने पड़ते हैं. तुम ऐसी व्यवस्था को बरबाद कर- चाहते हो जो आदमी से उसके सपनों को छीनती है, जो आदमी- तमन्नाओं को उजाड़ कर रख देती है, जो सिर्फ कुछ लोगों- दौलतमंद बनाती है. तुम ऐसी व्यवस्था को उखाड़ कर फेंक- चाहते हो! तुम समझने लगते हो कि यह सारा दोष उस व्यव- का है जो मुनाफे पर टिकी हुई है.

लायब्रेरी की किताबें तुम पर अपने अर्थ खोलने लगती- तुम्हें रूस और चीन की याद आती है. तुम्हें चे ग्वेवारा का व्यक्ति- रोमांचित करने लगता है. तुम क्रांति की ज़रूरत को महसूस क- हो. तुम्हारी हमदर्दी उन मजदूरों से हो जाती है जो एक आ- के मुनाफे के लिए दिन-रात कारखानों में अपना खून जलाते- तुम चाहते हो कि सिर्फ एक बार मज़दूर ये सोचे कि ज़रूरत- सारा सामान उसके गट्टों के दम पर बाज़ार में आता है और- भूखा-नंगा है. तुम्हें बहुत गुस्सा आता है कि इतने दिनों से आ- किस बात का इंतज़ार किया जा रहा है? ये लुटने और पिटने- लोग आखिर लड़ते क्यों नहीं? तुम चाहते हो कि क्रांति हो- ताकि आदमी मुक्ति की सांस ले सके. क्रांति हो जाये, तुम- हो. तुम बहुत-बहुत चाहते हो कि क्रांति हो जाये लेकिन तु- लाख चाहने के बावजूद कुछ नहीं होता. तुम उदास हो जाते-

'इस मुल्क में कुछ नहीं हो सकता, यहां के लोगों को- और भुखमरी की आदत है'—तुम सोचते हो और निरा- जाते हो. ये कायरों का देश है . . . तुम्हारी उदासी बढ़ती- जाती है और तुम अपनी उदासी में अकेले रह जाते हो.

दरअसल, तुम मध्यवर्ग के आदमी हो. तुम बड़ा- बनना चाहते हो लेकिन तुम्हारी आर्थिक स्थिति तुम्हें निचले- में फेंकती है. तुम्हें सपने देखने की आदत है, तुम स्वप्नजी- असल बात ये है कि तुम बीच के आदमी हो. तुम्हारा ना- कंचन हो या क, ख, या ग.

● 2172 नेताजी नगर, नयी दिल्ली—23

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

पाक्षिक सारिका

अप्रैल अंक : एक

रेणु स्मृति विशेषांक

संपूर्ण क्रांति रेणु में थी या रेणु संपूर्ण क्रांति में?

- रेणु: बीमारी से मृत्यु तक की मार्मिक कहानी!
- श्रीमती रेणु अब क्या करती हैं? क्या सोचती ह?
- ऐसे थे रेणु चाचा—अवसान तक अंग-संग, रहे उनके भतीजे 'जयशंकर' की मननशील स्मृतियां!
- 'मला आंचल' पर मान-हानि का मुकदमा और इसकी रेणु पर हुई प्रतिक्रिया के संदर्भ में मुकदमे की कहानी!
- **विशष : अनोख साक्षात्कार :**
  कथागत पात्रों का जीवंत संसार—
  रेणु, जो उन्हें भूलता नहीं... रेणु की रचनाओं में आये और अब तक जीवित ... संघर्षरत पात्रों से अंतरंग बातचीत ... रेणु को उन्होंने क्या दिया और रेणु से क्या लिया?
- रेणु की सर्वथा अप्रकाशित एक मैथिली कहानी और वसंत पर दो कविताएं!
- दस्तावेजी लेख, पत्र, डायरी, संस्मरण आदि.
- **ताकि सनद रहे : रामकुमार भ्रमर के धारावाही उपन्यास की पांचवीं किस्त**
- पाठकों का पन्ना, ज़रिया-नज़रिया, रोज़नामचा, पखवारे की पुस्तक, लघुकथाएं, ग़ज़लें आदि सभी स्थायी स्तंभों सहित

पाठकों, विद्यार्थियों, शोध-छात्रों एवं साहित्यकारों के लिए एक संग्रहणीय अंक!

वक्त की पहचान यानी जिंदगी की पहचान यानी—सारिका!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवाद : जुनूं में एक शाम

कुछ न समझे खुदा करे कोई!

लोठार लुत्से, राजेंद्र यादव और शानी : एक अंतरंग बातचीत

यह औपचारिक भेंट नहीं थी. लोठार लुत्से के गोल्फ-लिंक स्थित निवास पर हम खाने पर और गपशप के लिए आमंत्रित थे. अगर बातचीत का कोई पूर्व-निर्धारित मुद्दा था तो सिर्फ यही कि किसी साहित्यिक उपन्यास को जब सेल्यूलाइड पर उतारा जाता है तो क्या होता है—उस साहित्यिक कृति का या अंततः उस फिल्म का. राजेंद्र यादव, इसलिए कि 'सारा आकाश' पहली ऐसी साहित्यिक कृति है जिस पर फिल्म बनी. मन्नू भंडारी इसलिए कि उनकी कहानियों पर एकाधिक लोकप्रिय और सफल फिल्में बन चुकी हैं और मैं इसलिए कि मेरे उपन्यास 'सांप और सीढ़ी' पर सोनार फिल्म्स वाले शीघ्र ही एक फिल्म बना रहे हैं. मन्नूजी किसी कारणवश नहीं आ सकीं—लिहाज़ा उनकी कहानी 'यही सच है' की मूल प्रति और फिल्म 'रजनीगंधा' की स्क्रिप्ट ने उनकी उपस्थिति लगा दी.

उपन्यास से फिल्म, फिल्म से रचना-दृष्टि और रचना-दृष्टि से रचनाकार तक बातों का निकल जाना स्वाभाविक था. यह भी स्वाभाविक ही था कि रचना-दृष्टि की समयगत प्रासंगिकता की पड़ताल होने लगे और यह बहस छिड़ जाये कि साहित्य में कौन-सी विधा आज सार्थक रह गयी है और क्यों! हमने हिंदी कविता पर भी बात की और कहानी पर भी, लेकिन बातचीत को दिलचस्प मोड़ मिला खासकर केदारनाथ सिंह की कविताओं से. क्या उनकी 'रोटी' या 'बैल' जैसी कविता किसी भी भारतीय गांव के अपढ़ देहाती तक अपनी मूल संवेदना के साथ ज्यों की त्यों पहुंच सकती है? बहस खिंच कर 'इलीट' और 'नॉन इलीट' तक पहुंच गयी : यों—

रा. या. : अच्छा लुत्से, थोड़ा शिफ्ट करते हुए क्या मैं एक व्यक्तिगत सवाल पूछूं? बेहद अनौपचारिक भाव से जवाब देना.

लो. लु. : हां हां पूछिए. यहां कौन-सी औपचारिकता है.

रा. या. : तुम भारतीयता की या भारतीयता के संघर्ष में हिंदी लेखक पर बात करते हुए एक तरफ तो निर्मल के प्रशंसक हो और दूसरी तरफ रेणु के. यह बात मुझे हैरान करती है. बताना कि क्या यह परस्पर विरोधी बात नहीं है?

लो. लु. : मैं तो आपका, कमलेश्वर का या मन्नूजी का भी प्रशंसक हूं.

रा. या. : नहीं, हम लोग तो बीच में आते हैं.

लो. लु. : आपको यह बात परस्पर विरोधी क्यों लगती है? क्या यह नहीं हो सकता कि मेरी व्यक्तिगत रुचि भी हो और तटस्थ आलोचनापूरक दृष्टि भी और दोनों के चलते मैं दो परस्पर विरोधी धाराओं या दृष्टि के लेखकों को पसंद करूं—यह सोचते हुए कि भारतीयता की पूरी तस्वीर शायद दोनों को मिलाकर बनती हो.

बहुत से लोग कविता को भी इलीट के लिए मानते हैं या यह मानकर चलते हैं कि विश्वविद्यालयीय औपचारिक शिक्षा के अभाव वाले या देहाती लोग आज की कविता का रस नहीं ले सकते. मुझे शक है कि आपकी शिक्षा कविता या कल्पना के संस्कार भी दे सकती है अथवा नहीं! मैं एक उदाहरण देना चाहूंगा : केलिफोर्निया के एक प्रसिद्ध जेल के भयंकर अपराधों वाले संस्कारहीन कैदियों ने सेमुएल

■ शानी

बैकेट के एब्सर्ड नाटक 'एंड गेम' से अपने को आइडेंटिफाई किया और यही नहीं उसका सफल मंचन भी किया जो मैंने देखा है और हैरान हुआ हूं. दरअसल मैं समझता हूं कि हमें रचना के संदर्भ में बात करते हुए इलीट या नॉन इलीट जैसे खाने बना कर नहीं देखना चाहिए या यह भ्रम निकाल देना चाहिए कि गांव के एक संस्कारहीन आदमी तक आपकी सोफिस्टिकेटेड कविता नहीं पहुंच सकती.

शानी : मेरे पास एक दूसरा उदाहरण है. बस्तर के एक निपट जंगली क्षेत्र अबूझमाड़ में वहां के आदिवासी लोगों के बीच रहते हुए मैंने उनका एक गीत सुना था जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका के गालों की सुंदरता का बखान करता हुआ उसकी उपमा एक ऐसे नर्म और गुलाबी जंगली पत्ते से करता है जो सूरज की रोशनी में आग की तरह दहकता है. अब आप ग़ालिब के इस मिसरे को सामने रखिये :

"इक निगारे आतिशे-रुख़ सर खुला"

(अग्नि की तरह दमकते चेहरे वाली प्रेमिका जिसके केश खुले हुए हैं)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रा. या. : राजस्थान में आज भी एक लोककथा है जिसे दस-दस, पंद्रह-पंद्रह हज़ार की भीड़ तन्मय होकर सुनती और विभोर होती है. आपको आश्चर्य होगा कि वह लोककथा हू-बहू आल्बेयर कामू के नाटक 'क्रास परपज़' से मिलती-जुलती है. वरबेटम. अब यह मानने का कोई कारण नहीं है कि कामू का इस राजस्थानी लोक-कथा से या इस लोककथा के जनक का कामू से कोई संबंध हो सकता है.

लो. लु : फिर?

रा. या. : तुमने बात थोड़ी-सी उलझा दी. शायद मैं ऑब्जेक्टिव दृष्टि की बात कर रहा था. कहना मैं यह चाहता हूं कि एक ओर रेणु है जो गांव की अकृत्रिम ज़िंदगी को उसकी भाषा, मिट्टी और उसकी गंध के साथ उठाता है और आपको लगता है कि हां, यह आपकी जानी-पहचानी, देखी-भाली और परिचित दुनिया है यानी भारतीय है. लेकिन इसके विपरीत जब आप इलीटिस्ट निर्मल का लेखन. . .

लो. लु. : (बात काटकर हंसते हुए) इस लिहाज से, राजेंद्र, मन्नू के मुकाबले तुम भी क्या इलीटिस्ट नहीं हो और जैसा कि मैंने कहा, क्या मैं दोनों को पसंद नहीं करता?

रा. या. : (हंसी) नहीं, इसे इस तरह समझिए. दस बरस पहले मेरी जो बहस तुमसे हुई थी—उसमें जहां तक मुझे याद है तुमने राजाराव या मुल्कराज आनंद की तीखी आलोचना की थी कि उनकी भारतीयता व्यवसाय की है.

लो. लु. : मैं अब भी करता हूं और मानता हूं कि वे हैं तो कमरे में लेकिन खिड़की के बाहर पोंगा लगाकर वे किसी और को संबोधित कर रहे हैं. वे जानते हैं कि जिसे वे संबोधित कर रहे हैं वे भारतीय नहीं हैं. मुझे बताइए, क्या आप राजाराव का 'सरपेंट एंड द रोप' पढ़ सकते हैं? क्या आप यह बरदाश्त कर सकते हैं कि राजाराव आपको पृष्ठों लंबी तफ़सील में यह बताएं कि हनुमान कौन था और उसने क्या-क्या कारनामे अंजाम दिये?

रा. या. : मैं यही तो जानना चाहता हूं कि भाषा के भेद को हटा दें तो क्या अंतर हुआ? क्या यह हिंदी भाषा का महज 'इस्तेमाल' करते हुए पश्चिमी दृष्टि या वैसी मानसिकता का आयात करना नहीं हुआ? चाहे वे वात्स्यायन हों या निर्मल!

लो. लु. : मैं आपसे सहमत नहीं हूं. वात्स्यायन आपकी ही इस परिभाषा के अनुसार ज़्यादा भारतीय हैं.

रा. या. : शायद आप ठीक कहते हैं लेकिन मेरा मूल प्रश्न तो अभी भी अनुत्तरित है.

लो. लु. : राजेंद्र, तुमने राजाराव का जो उदाहरण दिया वह बात को दूसरी दिशा की ओर ले जाता है. निर्मल और रेणु जिस अलग-अलग भाषा में अपना संसार रचते हैं, वह भाषा स्वयं मेरी दिलचस्पी और पड़ताल का विषय है क्योंकि भाषा एक माध्यम है. लिहाजा मेरी वास्तविक दिलचस्पी का लक्ष्य है वह दुनिया जो उसके सहारे खड़ी होती है. . . . .

शानी : मेरा ख्याल है कि राजेंद्र का आग्रह भारतीयता और प्रासंगिक लेखन पर है. भारतीयता की वह जातीय गंध जो सख्ती से देखने पर शायद निर्मल के यहां नहीं है लेकिन क्या सिर्फ इसी से आप निर्मल-जैसे महत्वपूर्ण रचनाकार को खारिज कर सकते हैं? सवाल शायद यह है कि प्रासंगिक लेखन आज वास्तव में कौन कर रहा है और आज के संदर्भ में प्रासंगिक आप किसे मानते हैं? लुत्से बताएं कि क्या ऐसा नहीं होता? हमारे सेल्फ का एक हिस्सा कई बार अनरियलिस्ट और अप्रासंगिक होते हुए भी हमें प्रिय लगता है और हम उससे मुक्त नहीं हो पाते. क्या यहां सावधानी से चुनाव करने की ज़रूरत नहीं पड़ती? ठीक उसी तरह जैसे सारी बौद्धिकता के बावजूद हमें कई बार रूमानियत अच्छी लगती है और अकसर हम दोनों को गड्ड-मड्ड करते रहते हैं? देखिए, सम-सामयिक आधुनिक भारतीयता जो आज प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो सकती है वह मेरी दृष्टि में इस तरह है : आप कल्पना कीजिए एक ऐसे छोटे और धूल भरे कस्बे के ऐरोड्रम की जिससे एक तरफ तो कोलतार की सड़क आकर मिलती है लेकिन उसी के साथ जंगल, बैलगाड़ी का रास्ता और पगडंडी तीनों मिले हुए हैं और सभी सच हैं. शायद यह मुकम्मल तस्वीर ही प्रतीक रूप में सम-सामयिक आधुनिकता या आज की प्रासंगिक भारतीयता हो सकती है. अगर भारतीयता का इतना ही आग्रह है तो कृष्णा सोबती को छोड़कर हिंदी से बाहर ऐसा भारतीय लेखक जिससे मुझे व्यक्तिगत रूप से ईर्ष्या होती है वह हैं, कन्नड़ के के. आर. अनंतमूर्ति.

खाना लग चुका था. अबकी बार दूसरी चेतावनी मिली. लिहाज़ा हम अपने-अपने गिलास लेकर मेज़-पर आ गये वैसे भी 'जुनूं' खत्म हो रहा था चुनांचे मैंने सबको समेटते हुए ग़ालिब के सहारे माफी मांग ली —उनसे जो मौजूद थे और उनसे भी जो मौजूद नहीं थे : कहा :

बक रहा हूं जुनूं में क्या-क्या कुछ,
कुछ न समझे खुदा करे कोई! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़नामचा

दलीपसिंह मेरा सहपाठी रहा है. बी.ए. में अन्य विषयों के साथ उसने दर्शनशास्त्र जैसा शुष्क विषय भी लिया था लेकिन देखिए भाग्य का खेल उसे जाना पड़ा पुलिस विभाग में! अक्खड़ टाइप का आदमी है. शुरू में सिर्फ़ एक वक्त खाना खाता था—कहता था कि सरकार इतनी ही तनखा देती है. शहर का राउंड लेते समय उसकी बगल में एक डंडा रहता था जिसे उसने राष्ट्रप्रेम के रंग में सराबोर होने की वजह से 'जै हिंद' नाम दे रखा था. उस 'जै हिंद' की करामात कुछ ऐसी थी कि छः महीने से ज्यादा उसे किसी थाने में

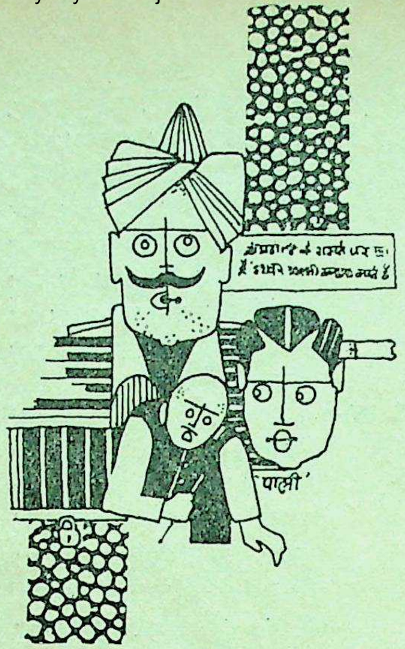

किस्तों में बंटी महानताएं

■ से. रा. यात्री

टिकने नहीं दिया जाता था. थाने में वह महज़ अपने लिए एक मेज़-कुर्सी रखता था. मिलने आने वाले किसी सज्जन को कुर्सी नहीं मिल पाती थी. जिसका सीधा असर यह होता था कि जन नेता उससे नाखुश होकर उसका ट्रांसफर कराकर दम लेते थे. मैं कई शहरों में उसके पास जाता रहा हूं और मैंने उसे 'डेरा उठाऊ' अफसर की ख्याति अर्जित करते हुए पाया है.

लेकिन इस बार सहारनपुर के थाने में उससे मिला तो मेरी तबीयत खुश हो गयी. कोतवाली में मेज़-कुर्सियों की कमी बिल्कुल नहीं अखरी बल्कि एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह देखने में आया कि कोतवाली की लंबी-चौड़ी दीवारों पर आदर्श वाक्य और सूक्तियां अंकित थीं. मुझे वातावरण अत्यंत स्वच्छ लगा. पहले उसके पास जाता था तो मन में हमेशा एक अपराधी-भाव रहता था कि कोई मुझे वहां बैठा देखेगा तो क्या सोचेगा! पर श्रेष्ठ सिद्धांतों की छाया में बैठकर मुझे पहली बार अनुभूति हुई कि कोतवाली भी धार्मिक स्थान का दर्जा ग्रहण कर सकती है बशर्ते कि दीवारों पर सात्विक भाव जगाने वाले वाक्य लिखे हों.

मुझे दीवार पर टकटकी लगाये देखकर दलीपसिंह मुस्करा कर बोला, "यार, सरकार को लोग बेकार बदनाम करते हैं. अब तुम्हीं देखो, पुलिस विभाग में कितनी तब्दीली आ गयी है. पहले हम लोगों के यहां दरोगा-दीवान और कांस्टेबिल साधारण बोलचाल तक में फूहड़ गालियां दिया करते थे. लेकिन जबसे वर्ष में 'शिष्टाचार सप्ताह' शुरू हुआ है पुलिस के लोग मामूली से मामूली आदमी को भी 'श्रीमानजी' कहकर बुलाते हैं. और यही क्यों, पुलिस मंत्रीजी की हिदायतों के मुताबिक हर कोतवाली, थाना और चौकी में जनता तथा पुलिस का 'मोराल' ऊंचा उठाने के लिए वेद वाक्य लिखे गये हैं. सरकार महसूस करती है कि जनता पुलिस से डरती है—शरीफ़ आदमी थाने के सामने से निकलते हुए घबराहट में पड़ जाता है. उसे लगता है कि यहां चोर, गुंडे, हत्यारे और सितम तोड़ने वाले रहते हैं," दलीपसिंह की नज़र दीवार पर गयी और वह आश्वस्त होकर कहने लगा, "लेकिन जबसे यह नया सरक्युलर आया है, पुलिस का मनोबल बहुत ऊंचा उठ गया है."

दलीपसिंह ने मेज़ पर पड़े पैकेट से सिगरेट निकाली और एक लंबा कश खींचकर बोला, "लेकिन मैं तुमको बतलाता हूं, तुम मान न जाओ तो मुझे दलीपसिंह न कहना." दलीप ने एक कांस्टेबिल को सरकारी आदेश खाता लाने का हुक्म दिया. कांस्टेबिल रजिस्टर लाया तो दलीपसिंह ने रजिस्टर खोलकर एक 'साइक्लोस्टाइल' पत्र निकालकर मुझे दिखलाया जिसमें विभाग के उच्चाधिकारियों की ओर से आदेश था कि जनता की सही सहायता करने के लिए सौजन्यता का वातावरण बनाने की आवश्यकता है. इसके लिए यह किया जाये कि प्रत्येक थाने में निम्न वाक्य 'कार्ड-बोर्ड' या दीवारों पर पेंट कराकर प्रदर्शित किये जायें. मैंने कुछ आदर्श वाक्यों की बानगी देखी जिनमें से कुछ ये हैं :

'जो सच्चाई के रास्ते पर हैं ईश्वर उनकी सहायता करता है.'

'आप उदारता का व्यवहार करके दूसरों का हृदय जीत सकते हैं.'

'राष्ट्र का उत्थान आपके हाथों में है.'

'सद्भावना के द्वारा आप अपने शत्रुओं को भी मित्र बना सकते हैं.'

उपर्युक्त वाक्यों के अतिरिक्त और भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातें सरकारी आदेशपत्र में दर्ज थीं. लेकिन दलीपसिंह ने मुझे सारे वाक्य नहीं पढ़ने दिये. वह बोला, "आओ मैं तुम्हें दिखलाता हूं कि मैंने इन्हें किस-किस तरह लिखवाया है." हालांकि अब तक मैं अनेक सूक्तियां पढ़ चुका था पर दलीपसिंह की मौलिक सूझ-बूझ का जायज़ा लेने के लिए उसके साथ उठकर खड़ा हो गया.

दलीपसिंह मुझे कोतवाली के सदर दरवाज़े पर ले गया. गेट में घुसते ही ऊपर दीवारों पर दो-दो गज़ की पटरियां उभरी हुई थीं. कोतवाली किसी पुराने किले से काफी मिलती-जुलती दिखलाई पड़ रही थी. पहली पटरी पर लाल रंग से एक वाक्य अंकित था 'जो सच्चाई पर चलते हैं' इस वाक्य का पूरक अंश, 'ईश्वर उनकी सहायता करता है' देखने के लिए कुछ गज़ आगे की तरफ बढ़ना ज़रूरी था. चार-छह कदम आगे चलकर दूसरी पटरी पर लिखा था 'ईश्वर उनकी सहायता करता है.' इसी तरह अन्य छोटे-बड़े आदर्श वाक्य दीवारों, खंभों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटरियों पर लाल, नीले, हिरमजी रंगों में शोभायमान थे.

सारा कुछ पढ़ने के बाद मैंने दलीपसिंह के सामने शंका व्यक्त की, "लेकिन दलीप, इस तरह की पेंटिंग पर तो सरकार का बहुत खर्चा आया होगा? देश भर के थानों, कोतवालियों और चौकियों पर ये सब लिखने में तो सारा खजाना ही खाली हो जायेगा!

दलीप मेरी मूर्खता पर समझदारी से हंसा और मेरे कंधे पर हथेली पटककर बोला, "यार! तुम भी रहे अहमक के अहमक! सरकार इस काम पर पैसा खर्च करती है? अच्छी बातें बोलकर तो सरकार पैसा वसूल करती है." दलीप ने नयी सिगरेट जलायी और बोलने लगा, "खैर! मेरे साथ जो हुआ वह तुम्हें बतलाता हूं. जिस दिन यह सरक्यूलर आया, मैंने अपने मातहत सारे इंस्पैक्टरों से कहा कि वह 'कार्ड-बोर्ड' पर महान बातें रंगवायें."

नथुनों से सिगरेट का ढेर-सा धुंआ छोड़कर दलीप ने इतिहास सामने कर दिया, "अशोक के जमाने में तो यह महान बातें पत्थरों पर खुदवायी जाती थीं. अब तो मामला बहुत आसान है. घंटे-दो घंटे में कागज़ों और गत्तों पर सैकड़ों 'मोटो' लिखे जा सकते हैं. हां, तो अभी यह किस्सा चल ही रहा था कि दो सिपाही और चार-छह आदमी एक जेबकतरे को लेकर आ गये. मैं 'मोटो' वगैरह की बात ही भूल गया. पता चला जेबकतरे ने कोतवाली से ज़रा हटकर एक आदमी की जेब काट ली थी और रंगे हाथों पकड़ा गया था. जेबकतरे की रपट लिखा दी गयी और उसे उठाकर बंद कर दिया गया. टुआ जमा करके लोगों को मैंने रफा-दफा कर दिया. उस मामले की तरफ से दिमाग़ हटाकर जैसे ही 'मोटो' लिखवाने की बातें शुरू कीं कि एक परेशान हाल आदमी ने आकर मेरे पांव पकड़ लिये. पूछने पर मालूम हुआ कि वह शख़्स अजीज़ पेंटर है. उसका भाई जेब काटते हुए पकड़ा गया है. वह उसी को छुड़ाने आया है. उसी वक्त मुझे 'ब्रेन वेव' आयी और मैंने अजीज से कहा, "अगर तुम अपने जेबकतरे भाई को छुड़ाना चाहते हो तो तुम्हें एक काम फौरन करना पड़ेगा."

और कहने के साथ ही मैंने वह 'मोटो' वाला कागज अजीज के हाथ में दे दिया. अजीज ने अपनी जेब से ऐनक निकालकर आंखों पर चढ़ायी और वह हर वाक्य ध्यान से देखने लगा. उसकी कुछ समझ में नहीं आया तो मैंने बतलाया कि यह फिकरे कोतवाली की दीवारों पर लिखे जायेंगे.

अजीज गिड़गिड़ाया, "सरकार, यह तो सवाब का काम है. इसमें क्या मुश्किल है बल्कि यह तो हम खुशी से कर देंगे और वह हरामी (अजीज का जेबकतरा भाई) आखिर किस मर्ज़ की दवा है. हिंदी का इलम उसे मुझसे कहीं जियादा है. आठवीं जमात तक मैंने उसे स्कूल में पढ़ाया है. . . की औलाद बुरी सोहबत में पड़कर जेबकतरा बन गया है. उसी को यह काम सौंपिये. साले पर चार 'जै हिंद' रसीद कीजिए. मिंटों में अल्फाज लिखता नजर आयेगा."

दलीप ने अपनी बात आगे बढ़ायी, "और देखिये जनाब, उसी जेबकतरे ने ये तत्व की बातें पेंट की हैं. हालांकि पेशे से वह साला अब भी जेबकतरा है." दलीपसिंह बी. ए. में पढ़ी फिलासफी को शायद अभी तक पूरी तरह नहीं भूला था सो बोला, "बुरे आदमी से अच्छा काम कराया जाये, यही उसके सुधार का सही रास्ता है."

मेरे चेहरे पर खोजी नजर डालते हुए वह निष्कर्ष देने की तर्ज पर बोला, "अब बताओ, इसमें किसी का क्या गया? इसमें सरकार ने कुछ नहीं दिया, डिपार्टमेंट ने धेला नहीं खर्चा. हमने भी कुछ नहीं दिया और अच्छी कद्रें (मूल्य) लोगों की नजरों में आने लगीं. हो सकता है, जेबकतरा भी किसी रोज जेब काटना छोड़ दे और मुझे तो यकीन है इसी तरह अच्छी बातें धीरे-धीरे समाजी जिंदगी में जड़ें जमाती चली जायेंगी. देर-सवेर अच्छाई का ही बोलबाला होगा."

दलीप की बातें सुनते हुए मेरे हृदय में गहरी पवित्रता का संचार होने लगा और सहसा मेरी नजर कोतवाली के गेट पर चली गयी—दो कांस्टेबिल एक फटेहाल आदमी को धकियाते हुए ला रहे थे. शायद इस बार सात्विक भावना का कोई और भी ज़ोरदार नमूना दलीपसिंह के सामने पेश किया जाने वाला था. □

घटना कथा

दारोगा और दर्जी

■ दिनेश त्यागी

शहर में एक दर्जी की दूकान में चोरी हुई. चोरों ने दूकान का एक ताला खोलने में कामयाबी पाकर दूसरा ताला खोले बिना ही कुंडा टेढ़ा करके दूकान के दरवाज़े खोल लिये और दूकान के अंदर जितने भी सिले-अनसिले कपड़े थे, लेकर चंपत हो गये.

सुबह जब पड़ोसी दूकानदार ने अपनी दूकान खोलते हुए दर्जी की दूकान का ताला टूटा देखा तो उसने दूकान में चोरी हो जाने की खबर दर्जी के घर भिजवायी. खबर पाते ही दर्जी भागा-भागा आया और दुखी होकर चोरी की सूचना देने पुलिस स्टेशन चला गया.

पुलिस ने सादे कागज पर उसकी रिपोर्ट लिखी और उससे कहा—"तुम चलो, हम अभी आते हैं. तुम दूकान के बाहर खड़े रहना. अंदर नहीं घुसना, नहीं तो निशान वगैरा मिट जायेंगे और हमें दिक्कत होगी". दर्जी बेचारा दूकान के बाहर शाम छह बजे तक खड़ा रहा. जब कोई नहीं आया तो वह दोबारा पुलिस स्टेशन गया और एस. एच. ओ. साहब को सारी स्थिति बतायी. एस. एच. ओ. ने दो सिपाहियों को बुलाकर उन्हें डांटा और तुरंत कार्यवाही करने को कहा. पुलिस वालों ने एक घंटे बाद दूकान का मुआयना करने के बाद रपट लिखी और उस पर दर्जी के हस्ताक्षर भी करवा लिये. रपट की प्रतिलिपि मांगने पर उन्होंने कहा, "कल थाने आकर ले लेना."

अगले दिन दर्जी महोदय थाने से उर्दू में लिखी हुई प्रतिलिपि लेकर आये और उसे एक उर्दू जानने वाले से पढ़वाया. उसमें लिखा था—मेरी ग़लती से कल मेरी दूकान का ताला खुला रह गया था. चोरी हो गयी. मैं नहीं चाहता कि इसकी तहकीकात के लिए किसी और को परेशान किया जाये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नया नाम

तेज़ी से हाथ में बंदूक थामें सीढ़ियां चढ़कर आने से मैं हांफने लगा था. ठांय! ठांय!! ठांय!!! समय का निश्चित-सा अंतराल हर गोली की आवाज़ के बाद. एक साथ कई प्रश्न उस बदहवास स्थिति में पहले से ही वहीं खड़े चाचा और ताऊ से पूछ बैठा, "कैसे? क्या? किसके यहां? कितनी देर से?" वे सांस रोके खड़े थे, ऊपर के कमरे में दरवाज़ों को बंद किये. मैं अभी तक मुक्त नहीं हो पाया था अचानक सुनकर लगे उस झटके से. पत्नी के साथ कमरे में सोया था, निश्चिंत, गहरी नींद. मां मेरा नाम ले-लेकर दरवाज़ा पीटे जा रही थी, "जल्दी उठ बेटा, डकैती पड़ गयी." मैं घबरा गया था. जानता हूं अब गांव में चोरी या डकैती चौंकाने वाली असंभव घटनाएं नहीं रहीं. पर हां, डराने-होश उड़ा देने वाली घटनाएं तो अवश्य हैं ही और तब मैं तुरंत कपड़े लटकाकर बंदूक उठाये ऊपर भागा चला आया था.

"बाहर निकलकर देखो तो किधर से आवाज़ आ रही है?"

"अभी रुक, गांव से कोई आवाज़ नहीं है." चाचा ने कहा था.

"बाहर मत निकलना, कोई गोली इधर ही आ लगे तो?" ताऊ ने बड़े धीमे स्वर में आशंका व्यक्त की थी.

दोमुंहे सांप

■ प्रेम कुमार

इतनी देर में मैंने बंदूक 'लोड' कर ली थी. जंगले के ऊपर के छोटे से हिस्से को खोलकर बाहर झांका था—सामने गहराता भयावह अंधेरा. सभी मकानों का अस्तित्व जैसे मिट गया है.

"लगता है यह तो बीच गांव में किसी के घर पड़ रही है".

"पर कमाल है, किधर से भी कोई आवाज़ तो आयी नहीं अब तक!"

"बहुत देर हो गयी गोलियों की आवाज़ों को, अब तो जग ही गये होंगे सब लोग."

मैं मौन उन दोनों की बातों को सुनता रहता हूं. अंदर का भय अब काबू में आ गया है. दरवाज़ा खोलकर बाहर से देखने को मन करता है. डकैती—संभवतः मेरे जीवन की सामने पड़ने वाली प्रथम डकैती. इसलिए देखने की वांछा, जवान कहे जाने वाले खून का उफ़ान, बंदूक से फायर करने का शौक—सब एक साथ जैसे मुझे बाहर निकल आने को उकसा रहे हैं. ऐसी ठंड में बंद कमरों व रजाइयों में दुबके होंगे लोग. यदि ऐसे में घर पर डकैत चढ़ आयें तो? इस तो के साथ ही बगल में रखी बंदूक पर मेरा हाथ पहुंच जाता है. उस समय तनिक-सी आहट सुनकर लगता जैसे सचमुच डकैत चढ़ रहे हैं घर पर. स्वयं को उनसे मुकाबला करने को तैयार करने लगता.

बाबा सुनाया करते थे, करीब तीस साल पहले पड़ी थी इस गांव में डकैती, केवल एक बार. वह भी आसानी से नहीं, गांव वालों ने घिराव कर लिया था डकैतों का. डकैत रातभर चलाते रहे थे और गांव वाले अपनी लाठियां संभाले मचाते खड़े रहे थे. अंततः खाली हाथ ही जैसे-तैसे बचाकर भाग पाये थे डकैत. इतना बड़ा गांव! डकैती डाल कोई आसान बात थी! अरे, आज तो तब भी तीस-पैंती सेंसी बंदूकें हैं. . . चोरी-छिपे चालीस-पचास कट्टे भी

मेरे सामने एक चित्र उभरता है—बाहर गांव की किये, शोर मचाते, गालियां बकते, ईंट फेंकते, ग्रामीणों हज़ारों की तादाद में. पर आज . . . ? कितनी देर गोलियां चलते?. . कहीं कोई उत्तर नहीं. आख़िर क्यों बाबा की तीस साल पहले की सुनायी बातें झूठी लगती

इसी उधेड़बुन में चाचा-ताऊ के मना करते-करते खोलकर बाहर छजली पर आ खड़ा होता हूं. मेरे आने विवश होकर मेरे पास ही आकर खड़े हो जाते हैं.

दूर कहीं कोई चीख—'बचाओ. . . .' फिर किसी भागकर इधर ही आते व्यक्ति की उत्तरोत्तर तेज़ होती "अरे भैया बचाओ, तेजा-प्यारे के डकैती पड़ रई है रे. . . . . . ब . . . च . . . इ . . . यो . . . भै . . या . . . रे. बार भैया कहने पर उसकी आवाज़ भीग जाती है मंद हो जाती है. आवाज़ हमारे घर की ओर ही बढ़ती है—करीब . . . और करीब. चाचा मेरा हाथ खींच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुबक जाने का इशारा करते हैं. दुबक जाता हूं मैं और वे दोनों भी. बहुत देर चीख-पुकार के बाद वह आवाज़ जिधर से आयी थी उधर ही जाकर निराश गुम हो जाती है. उसके बाद भी कहीं कोई स्वर नहीं, केवल ठांय! ठांय!!

"कितनी गोलियां लाये हैं कंबख्त! इतनी देर से यूं ही छोड़े जा रहे हैं."

"बिना इंतज़ाम के थोड़े ही इतने बड़े गांव में आयेंगे भला—वह भी बीच गांव में. तेजा-प्यारे का घर तो वैसे भी सब तरफ से घिरा है. तीन मंजिला—बिल्कुल संदूक की तरह, सुरक्षित. आखिर पहुंच कैसे गये वहां....!"

मैं उनकी बातें अनसुनी कर बंदूक की नाल ऊपर कर ट्रेगर दबाने को होता ही हूं कि ताऊ मेरा हाथ झटक देते हैं, "पागल हुआ है क्या? कोई और भी बंदूक वाला छोड़ रहा है गोली या तू ही....? मुफ्त में डकैतों की दुश्मनी...."

मैं रुक तो जाता हूं पर खीज से भरकर कहता हूं, "कमाल है, सब चुप हैं. डकैत बड़े आराम से लूटे ले जा रहे हैं वैसे ही डराकर. अरे, हम तीनों ही शोर मचाते उधर चलें! और लोग भी निकल आयेंगे घरों से तब!"

"वाह बहुत ठीक, अपना घर छोड़कर वहां मौत के मुंह में चलें!" चाचा का कहना था.

"तब यहीं से खड़े होकर एक बार आवाज़ लगा देखो न!" मैंने ज़ोर दिया था.

....

मुश्किल से राजी होते हैं मेरे यह कहने पर कि मैं अकेला ही आवाज़ देता हूं तो.

"ओये सम्हारियो.. हम आये रे...." तीनों ही एक साथ मिलकर चिल्लाते हैं.

"बड़े वीर बली बने हो भैया!" कल्ला फुसफुसाता है.

"चों, दिमाक सड़रोए का?" गनेशी बाबा हैं शायद.

"बिरानी अलाई में पन्नो ठीक ना होत लल्ला!" परसुराम बनिये की आवाज़ थी.

"जंगल कौ घरू ऐ. चों दुश्मनी लेतो फिजूल में. अपने घर रहो चुपचाप!" नेता लोधा कहता है.

"मौत बढ़िया हैरौए. जो जादा भागमान हैं ऐं जेई होनों चइयै उनके संग. सारे राजी ते देत कौन कू ऐं. हम चों अपनी जान गमाएं!" घीसू धोबी है शायद.

मैं चकित रह जाता हूं एक-एक की धीरे-धीरे आती आवाज़ें सुनकर.

आखिर क्यों? पूरे गांव के दर्द-मुसीबत को एक कहने वाले, इस डकैती को दूसरे की अलाई कह कर टाल रहे हैं. अधियानों पर तापते मुखों से न जाने कितनी बार सुन चुका हूं अपनी-अपनी बहादुरी के लंबे-लंबे किस्से—'मैंने एक साथ दस को मार भगाया'... 'वो लाठी चलायी कि बंदूकें टांय-टांय फिस्स कर गयीं'... 'फलां के घर से मैंने अकेले ही चोर भगा दिये.'... और न जाने क्या-क्या! अगाध श्रद्धा और विश्वास के साथ सुनकर मेरा मन रोमांचित हो उठता. पर अब लगता है कि वह सब झूठ था. सच तो केवल यह है जो मैं देख रहा हूं.

▣

चाय का प्याला हाथ में थमाते ही पत्नी सूचना देती है, "चुनुआ को मार गये."

"ऐं....!" प्याला हाथ से गिरते-गिरते बचता है. एक अजीब-सी खिन्नता घेर लेती है. अनमना, बिना चाय पिये ही बिस्तर छोड़ देता हूं. रात का पूरा दृश्य आंखों के आगे घूम जाता है. जाने क्या आता है मन में कि मृत चुनुआ को देखने चल पड़ता हूं.

हद हो गयी. उसका इकलौता जवान लड़का मर गया!.. अरे धन ले जाते, पर उस जीवाक को तो अनाथ न कर जाते. खाली गोली मार कर भी मन न भरा कसाइयों का; तीसरी मंजिल से नीचे आंगन में पटक दिया बेचारे को.... अभी ढाई साल तो हुए थे शादी को. कितना सीधा तंदुरुस्त-खूबसूरत पट्ठा था.... थोड़ी हेकड़ी न करता तो क्यों मरता? उफ! कितना रोका उसकी बीवी ने. उसकी मौत जो आ गयी थी, रुकता कैसे? टूट पड़ा खाली हाथ ही डकैतों पर. कैसा रो रहा है प्यारे, विधवा बहू और साल भर के नाती के सामने लाश पर गिर-गिर कर. देखा नहीं जाता. मुझे लगता है कि उसके घर तक पहुंचते-पहुंचते यदि चार-छह और लोगों के कथन सुनने पड़ गये तो अवश्य ही मेरे कानों के पर्दे फट जायेंगे.

सामने कुर्सियों पर दारोगाजी, चार-पांच सिपाही, प्रधानजी, सरपंच साहिब और गांव के कई मान्य व्यक्ति बैठे हैं. अपनी-अपनी बहादुरियां बखानते, बंदूकें चैक कराते—'साहब, मैंने आठ फायर किये, 'साहब मैंने दस..' 'मैं तो साहब पांच ही कर पाया था..' कहते बंदूकधारी.

अपने सामने की भीड़ को चीरकर आगे बढ़ने की कोशिश करता हूं. दरवाज़े पर खड़े प्यारे पर नज़र पड़ती है. वह चीख-चीख कर कुछ कह रहा है. मुश्किल से करीब पहुंचकर काफी कोशिश के बाद सुन पाता हूं—"तुम सब कमीने हो. चले जाओ यहां से, भाग जाओ. कोई ज़रूरत नहीं है अब तुम्हारे देखने की. रात क्या तुम मर गये थे? अब तमाशा देखने आये हो? जब तुम्हारे यहां डकैती पड़ेगी न—ज़रूर पड़ेगी, सबके यहां एक-एक करके.. ईश्वर करे पड़े—तब मैं भी नहीं आऊंगा तुम्हें बचाने; कोई भी नहीं आयेगा. तुम एक-एक कर लुटोगे ...मरोगे सब, याद रखना! भाग जाओ कमीनो, कायरो.. "

मेरा जी घबरा गया है. मतली-सी आने लगी है. □

● अशोकभवन, मानसिंह गेट, अलीगढ़

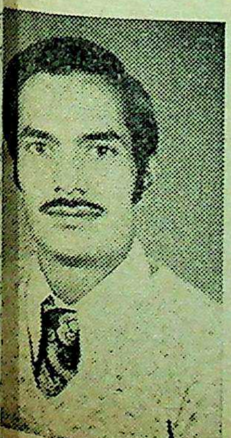

1952 में जन्मे प्रेम कुमार आगरा विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. हैं तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास का कथ्य विश्लेषण' पर इनका एक शोध प्रबंध परीक्षणार्थ है. कुछ कहानियां लघु पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं, सारिका में यह पहली कहानी है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तक

ढर्रेवादी महिला लेखन का विकल्प : क्या और कैसा ?

▣ मधुरेश

अपने संग्रह की भूमिका में नमिता सिंह ने लिखा है... 'अब महिला कथाकारों से एक खास तरह की रचना की अपेक्षा की जाती है. व्यापक जन-जीवन से उन्हें उदासीन करने का शायद यह अच्छा तरीका है..' सो इस संदर्भ में सबसे पहली बात यह है कि पिछले तीन दशकों में घटित सारे सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद व्यापक जन-जीवन से भारतीय स्त्री के संपर्क की संभावनाओं पर कोई बहुत बड़ा असर नहीं पड़ा है. कुछ प्रतिशत स्त्रियां उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाने लगी हैं, काफी बड़ी संख्या में वे नौकरियां करने लगी हैं और इसे बेशक उनकी आर्थिक आत्म-निर्भरता की तलाश के रूप में भी लिया जा सकता है. विवाह और दूसरे पारिवारिक संबंधों को लेकर बहुत-सी वर्जनाएं टूटी हैं और कुल मिलाकर यह सहज खुलापन आया है. आज हिंदी में जो महिला-लेखन हो रहा है वह अधिकांश में इन सारी स्थितियों के आस-पास ही केंद्रित है और उसमें अगर किसी प्रकार की जीवंतता और ऊर्जा दिखायी देती है तो उसका एक मात्र कारण यह है कि वह सारा लेखन अपने अनुभवों और सोच के प्रति खुला एवं सच्चा रह सका है. लेकिन इस लेखन के बारे में यह भी उतना ही सच है कि वह भयंकर एक-रसता की शिकार है और इस स्थिति से सबसे अधिक क्षुब्ध वे महिला कथाकार ही हैं और वे भरसक इस सीमा से बाहर निकलने की बेचैनी का इज़हार कर रही हैं. लेकिन सारी परेशानी तब पैदा होती है जब इस बेचैनी और इसके परिणाम-स्वरूप की गयी कोशिशों के नतीजे भी जब बहुत बेहतर निकलते नहीं मालूम होते हैं. भारतीय समाज में व्यापक जन-संपर्क की संभावनाओं की स्थितियां पैदा करने से पहले किसी व्यापक जन-संपर्क की अपेक्षा से उनके और उनके लेखन के साथ किसी हद तक ज़्यादती भी हो सकती है, लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं कि अंततः रास्ता वही है और उस रास्ते की एक बेचैन तलाश कहीं न कहीं इन लेखिकाओं और उनके कृतित्व को लेकर आश्वस्त भी करती है.

राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं से निकट संपर्क और स्वयं भी एक राजनीतिक कार्यकर्त्ता होने के नाते नमिता सिंह को सहज ही वे सुविधाएं प्राप्त हैं जो आमतौर पर हमारे यहां दूसरी युवा लेखिकाओं को नहीं मिल पाती हैं. यही कारण है कि रचना-वस्तु की दृष्टि से उनकी कहानियों के इस पहले संग्रह में ऐसी कहानियां काफी बड़ी संख्या में हैं जिन्हें आमतौर पर महिला लेखन के दायरे से बाहर की चीज़ समझा जाता रहा है. लेकिन नमिता सिंह के इस संग्रह में कई कहानियां ऐसी भी ज़रूर हैं और सफल भी बन पड़ी हैं, जो अब तक महिला लेखन के लेबल के ज़रिये ही पहचानी जाती रही हैं. 'चेहरे', 'ममी', 'जमी हुई बर्फ' और 'लहरों के बीच' आदि कहानियां बेशक ऐसी ही कहानियां हैं. 'चेहरे' में एक ऐसी युवती को अंकित किया गया है जो हॉस्टल में रहकर बड़ी हुई है, जहां प्रायः सब लड़कियों के फ्रेंड्स आते थे और उन्हें लेकर शाम को वे बाहर निकल जाती थीं. अब अतुल से शादी के बाद भी, उसकी प्रतीक्षा का अकेलापन उसे उतना ही निरीह बना जाता है जैसा कभी हॉस्टल के दिनों में होता था और तब उसे लगता है जैसे हॉस्टल का वह कमरा अभी भी कहीं न कहीं उसके साथ ज़िंदा है. अतुल की ऐसे ही प्रतीक्षा भरे क्षणों में जब उसका कैसा ही भाई विनय वहां आ जाता है तो उसकी उपस्थिति उसके लिए खासी परेशानी का कारण बन

जाती है. रह-रह कर उसे लगता [illegible]
विनय के चेहरे पर जैसे अतुल का [illegible]
चढ़ गया है और विनय, विनय [illegible]
अतुल ही है. 'उसका दिल चाह [illegible]
कि ये विनय इस समय अतुल [illegible]
जाये और वह अपनी आंखों में [illegible]
की नज़र भर देख रही है उसे [illegible]
वह चाहती है, अतुल इस समय उसे [illegible]
बाहों में भर ले, उसके साथ मि[illegible]
एक हो जाये. वह नज़र हटाती है [illegible]
विनय उसकी इस इच्छा को भांप [illegible]
हो, और वह बेतरह लापरवा[illegible]
घड़ी की ओर देखती है...' (पृ. [illegible]

घर, बच्चे, समाज और [illegible]

'ममी' में एक महिला [illegible]
की उस वेदना को अभिव्यक्ति [illegible]
है जो घर और बच्चे के नाम प[illegible]
कला की दुनिया से निर्वासित हो [illegible]
है और बहुत बाद में उसे इस [illegible]
अनुभूति होती है कि वह अपने [illegible]
पति अक्षय से बहुत पीछे छूट [illegible]
और उसकी उपलब्धियों पर अब [illegible]
ताली बजाने वाली भीड़ का एक [illegible]
बनकर रह गयी है. 'जमी हु[illegible]
में उन सामाजिक स्थितियों [illegible]
संकेत किया गया है जो स्त्री को [illegible]
पूरे परिवार में एक बहू की हैसि[illegible]
एकदम ठंडा और निर्जीव बना [illegible]
देती है और फिर धीरे-धीरे [illegible]
भी इस स्थिति से समझौता [illegible]
है. 'लहरों के बीच' में लहरें निषे[illegible]
वर्जना की हैं जिन्हें विदेश में, प[illegible]
बच्चे से दूर रहकर सविता [illegible]
पार कर ही लेती है. अपने [illegible]
लेने को भारत में जो तर्क कभी [illegible]
देता था, आज डैनियल भी [illegible]
दे रहा है और उसे वह कोरे [illegible]
अधिक कुछ लगता है. मन्नू भं[illegible]
'ऊंचाई' में जैसे होता है. यहां [illegible]
को भी लगता है कि इस संबंध [illegible]
और सुबोध के संबंधों में कहीं [illegible]
नहीं पड़ने वाला है... 'अब सोच[illegible]
डैनी उसकी आवश्यकता भर [illegible]
और यह कुछ समय की आ[illegible]
कैसे उसके और उसके पति के [illegible]
बीच आ सकती है! वर्तमान [illegible]
वर्तमान है, उसका सुख क्यों [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

की कल्पना के कांटों से बांधा जाये. जो अभी मिल रहा है उसे, जो कल न था, उस पर न्योछावर करना क्या मूर्खता नहीं.

नमिता सिंह के इस संग्रह में उन कहानियों की संख्या अनुपातत: कहीं ज्यादा हैं जिन्हें वह 'महिला-लेखन' के बल से व्यापक जनसंपर्क के परिणामस्वरूप लिखी हुई कहानियां कहती हैं. ऐसी कहानियों में चमरटोली के लोगों के लिए समाजवाद की पाठशाला है, वर्ण और वर्ग संघर्ष है, जेल और दल के बिखराव की चर्चा है. इनमें ऐसी युवतियां भी हैं जो सामंती जड़ता से निकलकर अपने को सामाजिक और राजनीतिक कार्य के लिए तैयार करती हैं. इनके अलावा और भी कई कहानियां हैं जो लेखिका के सामाजिक पर्यवेक्षण की गवाही देती हैं और महिला-लेखन के ढर्रे को पर्याप्त सार्थक ढंग से तोड़ने की कोशिश करती हैं. इन कहानियों में अच्छी-बुरी दोनों ही तरह की कहानियां हैं और उन्हें आमने-सामने रखकर कुछ ऐसे निष्कर्षों तक पहुंचाया जा सकता है जहां ढर्रेवादी महिला-लेखन के अतिक्रमण और सार्थक विकल्प की संभावनाएं देखी जा सकती हैं. 'काले अंधेरे की मौत', 'सन्नाटे से आगे', 'मुक्ति' और 'नाले पार का आदमी' आदि कहानियों की सब से बड़ी कमज़ोरी यह है कि ये कहानियां वस्तुतो कैसे भी सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष को अंकित न करके उसके होने की गवाही और सपाट सूचनाएं मात्र देती हैं– 'काले अंधेरे की मौत' में चमारों के लिए किये गये समाजवादी कार्य और सवर्णों से उनके संघर्ष की सूचना–या अतिरंजित एवं अतिनाटकीय स्थितियों की कल्पना से वे स्खलित भावनाधर्मिता का उदाहरण बन गयी हैं. 'सन्नाटे से आगे' विद्यानिवास द्वारा अपने बीस वर्ष पुराने मित्र के लिए, जिससे बाद में उनका कोई खास संपर्क नहीं रह जाता है, अपना घर और परिवार छोड़ने का निर्णय एक ऐसी ही अतिनाटकीय स्थिति का उदाहरण है. 'नाले पार का आदमी' में वर्ग चेतना के सवाल को उठाकर यह दिखाने की कोशिश की गयी है कि पूंजीवादी वर्ग अपनी सारी कथित प्रगतिशीलता और वामपंथी चेतना के बावजूद सर्वहारा से संबंध न जोड़कर अपने ही वर्ग से जोड़ता है, थोड़े समय के इश्क और रोमांस की बात अलग है, और कभी यदि यह संबंध जुड़ता भी है, तो उसका नतीजा हमेशा ही सर्वहारा की चेतना और सोच के कुंठित होने में निकलता है. लेकिन कहानी में जिन फिल्मी नुस्खों का इस्तेमाल किया गया है वे फिर उसकी सारी विश्वसनीयता को क्षति पहुंचाते हैं. 'मुक्ति' सोच के सरलीकरण की उपज है जो लेखिका के इस भोले विश्वास को सामने लाती है कि एक पूंजीपति निर्ममता की किसी भी सीमा तक जा सकता है–जबकि वह बच्चे को यमुना में न फेंककर कोई भी कम जोखम का रास्ता अपना सकता था.

राजनीति बनाम कहानियां

ढर्रेवादी महिला लेखन का विकल्प सपाट राजनीति और सरलीकृत निष्कर्षों की कहानियां लिखना ही नहीं है. राजनीतिक चेतना बेशक हमारे लेखन पर धार रखती है लेकिन उसके सही उपयोग के लिए गहरे कलात्मक विवेक और रचना-क्षमता की अपेक्षा होती है. 'खुले आकाश के नीचे' भी एक राजनीतिक कहानी है. इसमें सर्वहारा की मध्यवर्गीय वामपंथी नेतागीरी का विरोध किया गया है. कहानी में ऐसी नेतागीरी के प्रतिनिधि क़ॅफी साहब हैं. कलकत्ता में बीना को देखकर कुछ भी महसूस न होना इस बात का सबूत है कि वह अपने पुराने मध्यवर्गीय संस्कारों से पूरी तरह मुक्त हो चुका है. खुले आकाश के नीचे उसके लेट सकने से इसी परिवर्तित स्थिति की सूचना मिलती है, जो बीना और राजेश जैसे फैशनेबल वामपंथियों से काटकर सर्वहारा के वास्तविक हितों से उसे जोड़ती है. 'टूट जाने के बाद' में, बड़े कलात्मक ढंग से, एक प्रौढ़ व्यक्ति—रमन बाबू–के अकेले होते जाने की नि:संगता को अंकित किया जा सका है. संतान के नाम पर उनके केवल लड़कियां ही हैं और वे भी एक-एक करके अपना घर बसा चुकी हैं. सुमिता बची है, सो चार-पांच साल की नौकरी भी अभी

नमिता सिंह

बाकी है... उससे निबटकर फिर किसी से नये सिरे से जुड़ने को वह तैयार नहीं. 'परतें' में एक ऐसी युवती के मनोद्वंद्व को अंकित किया गया है जो रूढ़ियों की जड़ता से उबरकर अपने पति के सामाजिक-राजनीतिक कार्य के लिए अपने को तैयार करती है. 'ठहरा हुआ सवेरा' में जनतंत्र और राजनीतिक स्वतंत्रता के उस नाटक का पर्दाफ़ाश हुआ है जहां बदलने की सारी घोषणाओं के बावजूद कहीं कुछ नहीं बदला है–सिवाय इसके कि कुछ अंग्रेजों के ढंग की नयी इमारतें बन गयी हैं और कुछ इमारतों और सड़कों के नाम बदल दिये गये हैं. सत्ता पाकर चमार नेता भी अपने लोगों के पसीने की बदबू से मुंह बिसूरने लगा है. सूखा से परेशान हाल लोगों की भीड़ देखकर अगर रात में उसकी नींद टूट जाती है, तो इस बात से उसे राहत भी मिलती है कि रात अभी काफी बाकी है. राहत इसलिए कि सवेरे की आमद स्वयं उस जैसे लोगों के अस्तित्व के लिए खतरा साबित होगी. लेखिका की सोच ही नहीं, स्वयं कहानी भी इस तथ्य को बड़े सहज ढंग से रेखांकित कर सकी है. □

चर्चित पुस्तक
खुले आकाश के नीचे
▣ नमिता सिंह
भाषा प्रकाशन, पश्चिमपुरी, नयी दिल्ली.
मूल्य : 12 रुपये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

व्यंग्य : विधा या प्रवृत्ति?

पिछले दिनों राजधानी की साहित्यिक संस्था 'दिशाबोध' की ओर से सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार रवींद्रनाथ त्यागी की अध्यक्षता में प्रेम जनमेजय की सद्यः प्रकाशित व्यंग्य पुस्तक 'राजधानी में गंवार' पर एक गोष्ठी आयोजित की गयी. संयोजन दिविक रमेश ने किया. इस गोष्ठी में चर्चा केवल प्रेम की पुस्तक तक ही सीमित न रह कर 'व्यंग्य विधा है या प्रवृत्ति' तथा 'आज की घटिया समीक्षक-मनोवृत्ति' आदि प्रश्नों तक विस्तृत हुई. सुधीश पचौरी ने आज के उन समीक्षकों पर प्रहार किया जो गुटों की मानसिकता से संचालित होकर उठा-पटक करते रहते हैं, उन्होंने व्यंग्य को स्वतंत्र विधा न मान कर प्रवृत्ति मात्र माना जो किसी भी साहित्यिक विधा में उभर सकती है. प्रेम की रचनाओं को उन्होंने समाजोन्मुखी माना हालांकि उनके अनुसार इन रचनाओं में आयी 'साइड कमेंट्स' देने की पद्धति दोषों के अंतर्गत ही आती है. शेरजंग गर्ग ने प्रेम में सामाजिक विसंगतियों को उकेरने की शक्ति स्वीकार की. हरीश नवल को यह संग्रह आशाओं से भरा-पूरा लगा. डॉ. हरदयाल को इस संग्रह की बहुत सी रचनाएं अस्वाभाविक लगीं, तो भी 'मनुष्य और ठग' उन्हें एक 'परफेक्ट' रचना प्रतीत हुई. डॉ. विनय के अनुसार व्यंग्य फिलहाल पद्धति ही है. 'विधा' का दर्जा अभी उसे दिलाना होगा. प्रेम के भीतर उन्हें एक अच्छे कहानीकार का आभास हुआ. अवधनारायण मुद्गल को इन रचनाओं में 'पुनरावृत्ति' दोष नज़र आया. डॉ. राजकुमार शर्मा ने 'हास्य' और व्यंग्य के अंतर को विस्तार से समझाया तथा अब तक के व्यंग्य-लेखन पर एक दृष्टि दी. प्रेम के व्यंग्य उन्हें सही समझ से परिपूर्ण लगे. सुरेश कांत ने भी 'हास्य' और 'व्यंग्य' में अंतर माना. उनके अनुसार प्रेम ने इस अंतर को समझा है. रमेश बत्तरा को ये व्यंग्य प्रभावशाली नहीं लगे चाहे किसी हद तक वे हंसा भले ही दें. व्यंग्य का वस्तुगत चरित्र भी उनके अनुसार स्पष्ट नहीं है. नरेंद्र निर्मोही ने 'व्यंग्य' का काम केवल हंसाना नहीं माना. 'मनुष्य और ठग' को उन्होंने अच्छी कृति माना. इनके अतिरिक्त सुरेश उनियाल, जगदीश चंद्रिकेश ने भी टिप्पणी की.

अध्यक्षीय वक्तव्य में श्री रवींद्रनाथ त्यागी ने व्यंग्य के विरुद्ध व्यक्त किये गये विचारों पर अपनी असहमति व्यक्त की. उन्होंने कहा कि प्रेम जनमेजय की यह पहली पुस्तक है और इसी परिप्रेक्ष्य में इस पर विचार किया जाना चाहिए था. इसमें अभिव्यक्ति की कमज़ोरियां हो सकती हैं. लेकिन लेखक ने ईमानदारी से लिखा है. उनके अनुसार प्रेम में हास्य की अपेक्षा व्यंग्य अधिक है. □

प्रस्तुति : दिविक रमेश

बायें से: विनय, हरीश नवल, सुधीश पचौरी, नरेंद्र कोहली, प्रेमजनमेजय, रवींद्रनाथ त्यागी, दिविक रमेश, अवधनारायण मुद्गल, शेर जंग, विनोद शर्मा, श्रीकृष्ण, रमेश बत्तरा

नागार्जुनः कविता का स्वर उद्घाटन

एक कविता या

शाहजहांपुर की सार्थक नवले साहित्यिक संस्था 'अनामिका' दिनांक 30 दिसंबर, '78 से 1 ज '79 तक स्थानीय गांधी भवन में कविता यात्रा' शीर्षक से कविता- प्रदर्शनी प्रस्तुत की गयी, जिसके आधुनिक चित्रकला तथा लघु प्रदर्शनी का भी आयोजन किया कविता-पोस्टरों का चित्रांकन युवा कार श्री चंद्रमोहन दिनेश तथा रस्तोगी ने किया.

उक्त अवसर पर श्री नागार्जुन कि "यह कविता-पोस्टर-प्रदर्शनी में 'अनामिका' का पहला तथा एक प्रयास है. इन पोस्टरों पर अंकित आम कवि-सम्मेलनी कविताओं से अलग हैं तथा आम आदमी से जुड़कर उसकी बात उसकी ही कहती हैं." पटना से आये हुए ज के प्रखर कवि कुमारेंद्र पारसनाथ इस आयोजन को अत्यंत सफ सार्थक बताते हुए जन-सामान्य तक का एक सही माध्यम बताया.

इस प्रदर्शनी में 'निराला' से आज तक के कवियों की प्रमुख रचनाओं को सचित्र अंकित कि था. प्रदर्शनी में हिंदी के समर्थ कारों सर्वश्री निराला, भवानीप्र अज्ञेय, धर्मवीर भारती, रघुवी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गजान मुक्तिबोध, धूमिल, दुष्यंत रचनाएं प्रदर्शित की गयी थीं.

प्रस्तुति : चंद्रमो

कोलमैन ऐ म तरनेजा बाद-38 -600008

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

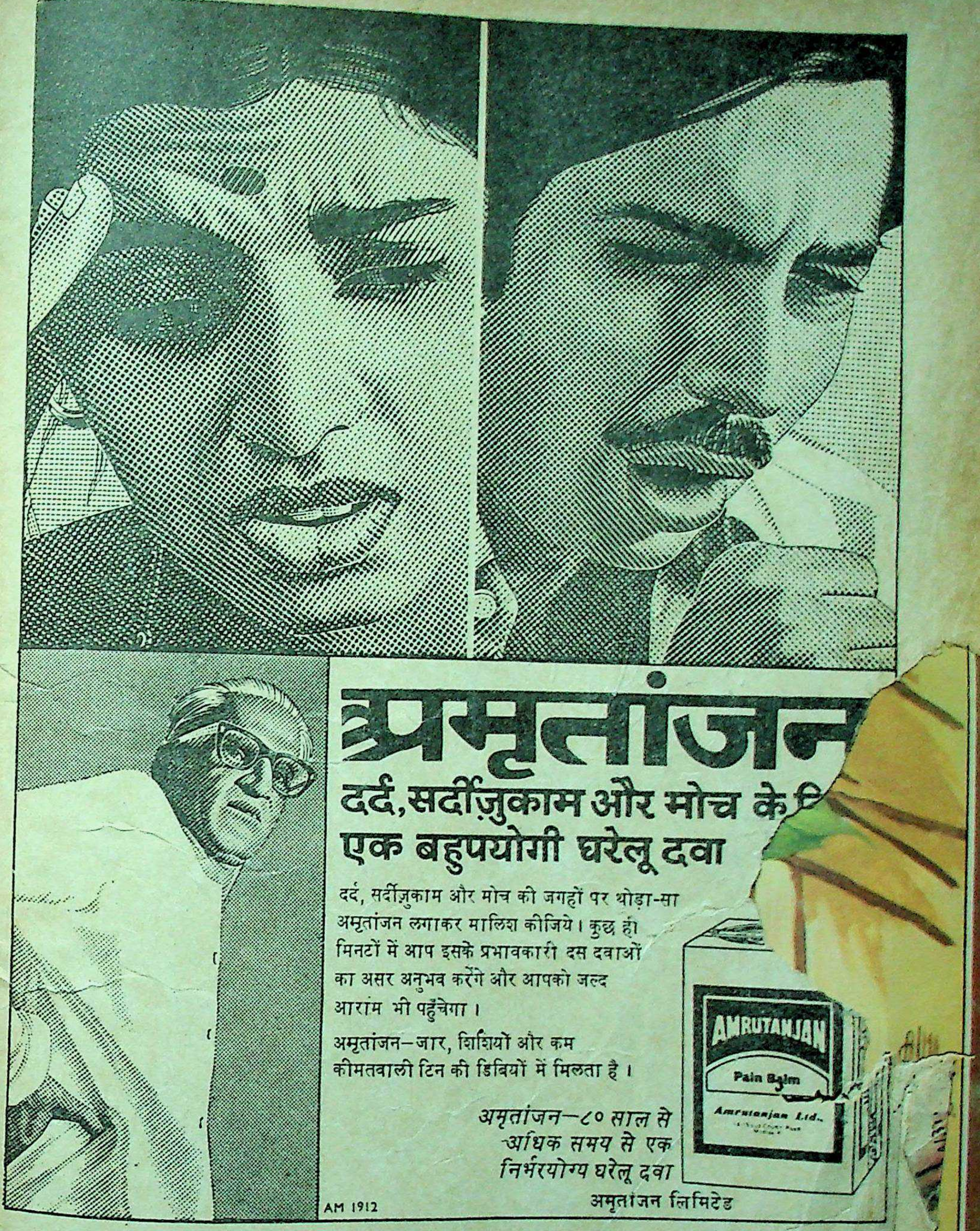

कोलमैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल ...म तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, अ... ...बाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 15, मोंटियथ रो... ...-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, बेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-9...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति–लाइसेंस सं. U-89

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

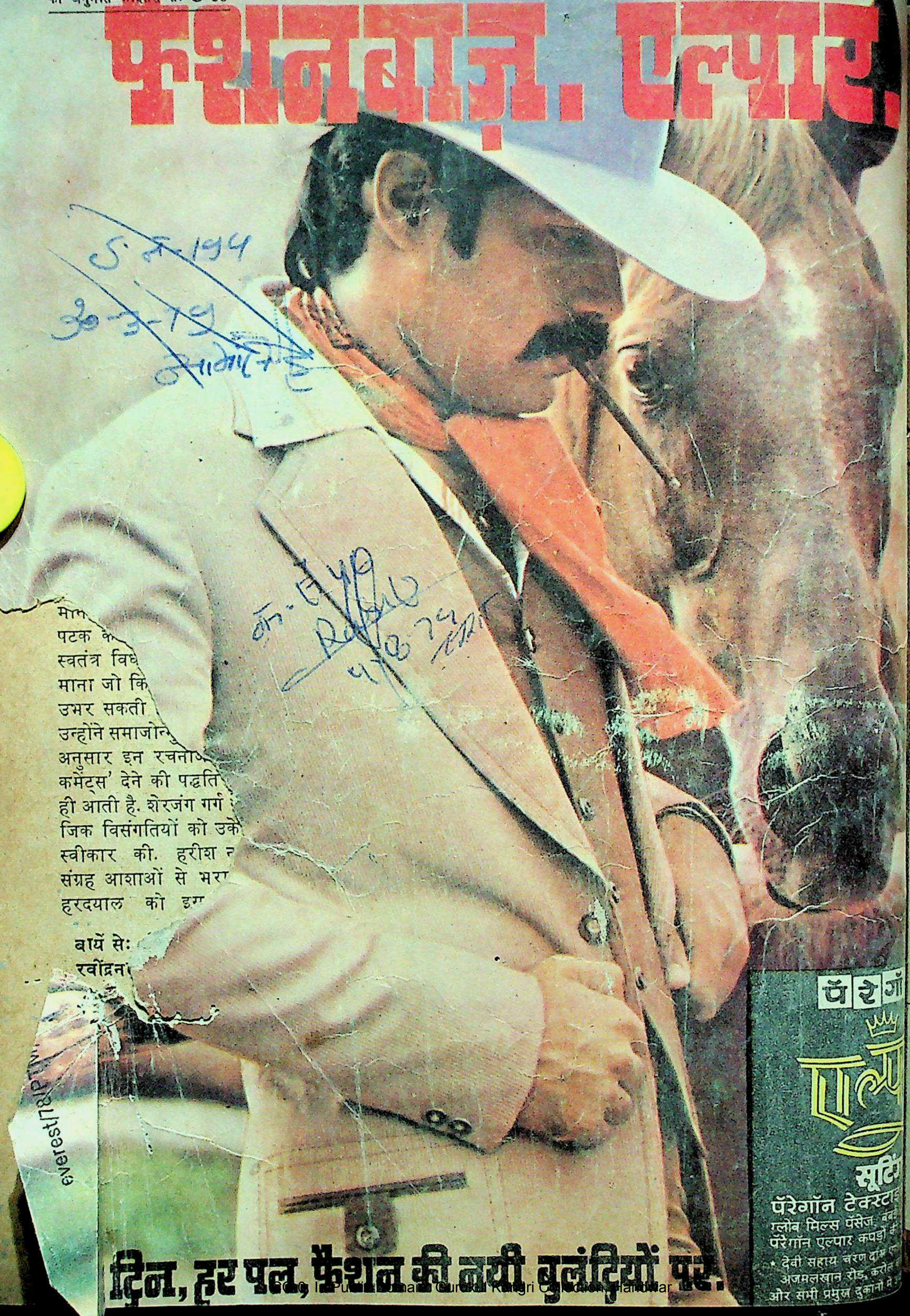

मा
पटक
स्वतंत्र विधे
माना जो कि
उभर सकती
उन्होंने समाजो
अनुसार इन रचनाओं
कमेंट्स' देने की पद्धति
ही आती है. शेरजंग गर्ग
जिक विसंगतियों को उके
स्वीकार की. हरीश न
संग्रह आशाओं से भरा
हरदयाल को इग

बायें से:
रवींद्रन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar